॥ ॐ इदम् ॥

'विषम-पद-सङ्केत'-टीकया तथाऽन्याभिष्टिप्पणीभिः संवलितं
भारत-भाषानुवाद-भूषितञ्च वृद्ध-स्वच्छन्द-तन्त्र-प्रोक्तं

श्रीबहुरूपगर्भ-स्तोत्रम्

सङ्ग्राहकः संयोजकश्च —
पं० श्री शम्भुनाथ राजदानः
पुरुषयार, श्रीनगर, काश्मीर

प्रधान-सम्पादकः —
डा० मण्डन मिश्रः, प्राचार्यः

★

अनुवादकः सम्पादकश्च —
डा० रुद्रदेव त्रिपाठी

★

प्रकाशकः —
श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्
नई दिल्ली-११००१६

॥ ॐ इदम् ॥

विषम-पद-सङ्केत-टीकया तथाऽन्याभिष्टिप्पणीभिः संवलितं

भारत-भाषानुवाद-भूषितञ्च

वृद्ध-स्वच्छन्दतन्त्र-प्रोक्तं

श्रीबहुरूपगर्भ-स्तोत्रम्

सङ्ग्राहकः संयोजकश्च—

पं० श्रीशम्भुनाथ-राजदानः

पुरुषयार, श्रीनगर (काश्मीर)

टीकाकारः —श्रीमद्-अनन्तशक्तिः, शैवागमनिष्णातः

टिप्पणीकारः —

(१) पं० श्रीबलजिन्नाथः, शैवागम-विशारदः

भू० पू० अनन्तनागस्थ-महाविद्यालयस्य प्राध्यापकः)

श्रीरणवीर-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्, जम्मू (काश्मीर)

(२) पं० श्री गोविन्द भट्टः, शास्त्री,

(३) राजानकः पं० श्री शम्भुनाथः

पुरुषयार, श्रीनगर (काश्मीर)

प्रधान सम्पादकः —

डॉ० मण्डनमिश्रः, प्राचार्यः

अनुवादकः सम्पादकश्च —

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

प्रकाशकः —

श्रीलालबहादुर शास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्

नई दिल्ली-१६

सन् १९८६ ई०

प्रकाशकः —
डा० मण्डनमिश्रः, प्राचार्यः
श्रीलालबहादुरशास्त्री केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्
शहीदजीतसिंहमार्गः, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-११००१६

प्रकाशन-वर्षम् १९८६ ई०

प्रथमं संस्करणम् ६०० पुस्तकानि

मूल्यम्

मुद्रकः —पङ्कज प्रिण्टर्स, मौजपुर, दिल्ली-११००५३

"भगवान् श्रीबहुरूपो विजयते"

पञ्चवक्त्रस्त्रिपञ्चाक्षो ह्यष्टादशभुजः शिवः ।
स्वच्छन्दभैरवः पायाद् बहुरूपः कृपाकरः ॥
—रुद्रस्य

ॐ

(विषयानुक्रमणिका)

— ० —
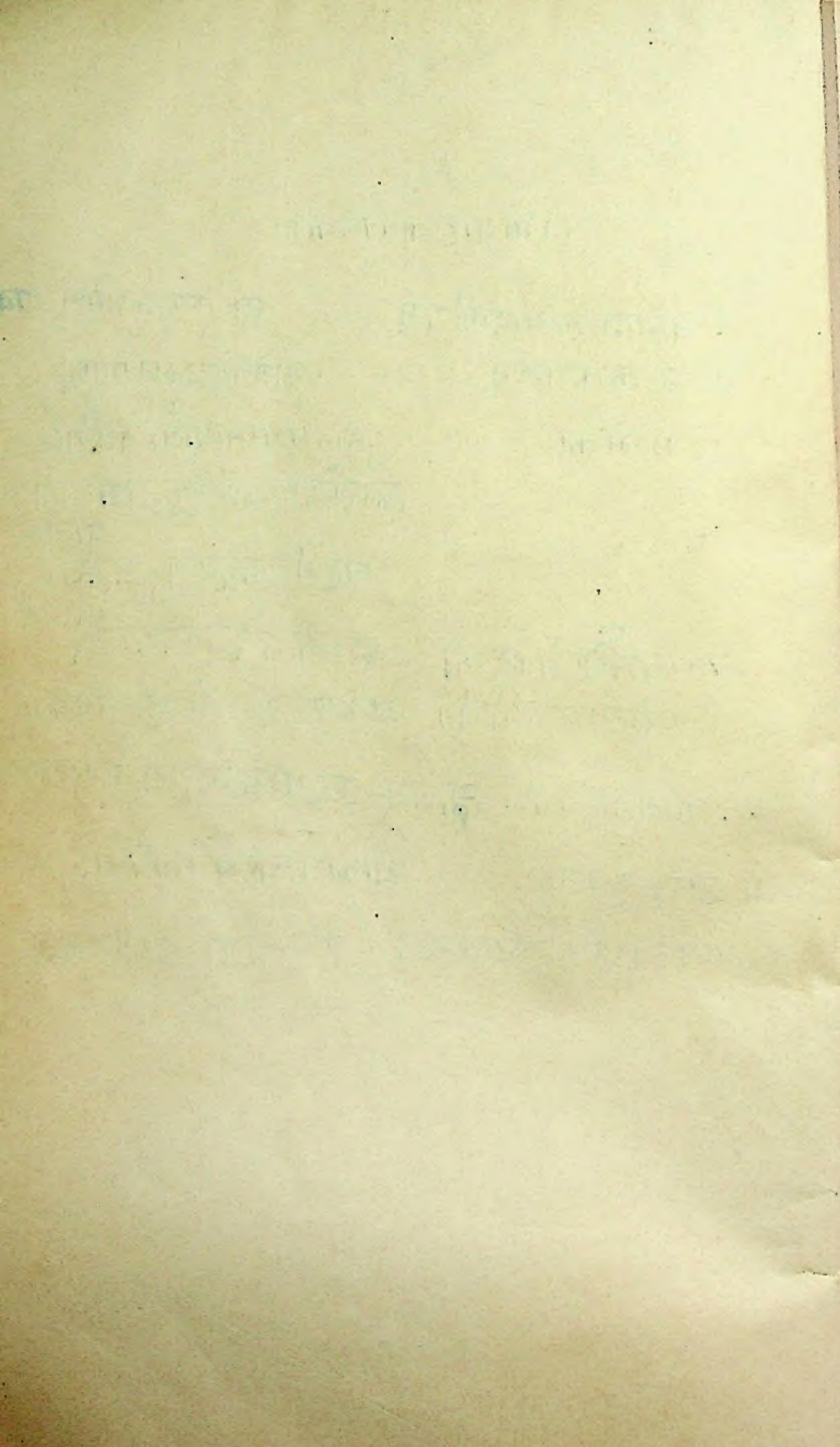
प्रधानसम्पादकीयम्

भगवतः श्रीबहुरूपस्य महिमा सर्वातिशायी विद्यते। प्रत्येकमुपासकः परमश्रद्धया सर्वेषां साधनाकर्मणां सम्पूर्तये'श्रीबहुरूप-गर्भ'स्तोत्रस्य पाठ करोति। स्तोत्रमिदं वृद्धस्वच्छन्द-तन्त्रान्तर्गतमिति श्रूयते। तान्त्रिकविज्ञानेन विजृम्भितमिदं काश्मीरनिवासिना राजानक श्रीशम्भु-नाथ-महाभागेन समुद्धृतम्। एतद् हि येन महिम्ना मण्डितं विद्यते तस्य वास्तविकं स्वारस्यं बोधयितुं श्रीशम्भुनाथविद्वद्भिः प्रेरिता विद्वांसः स्वीयां स्वीयां स्वतन्त्रां स्व-स्वबुद्धिबलोदय-विराजितां टिप्पणीं विरच्यास्य भूयोऽपि गौरवमवर्धयन्।

मम समीपे मदीयमित्रवरेण राजस्थानस्य-अलवरनगरस्थितेन तत्रस्य-राजकीय-कला-महाविद्यालयस्य हिन्दी-विभागप्राध्यापकेन डॉ० शिवनकृष्ण रैणा-महाभागेन स्तोत्रमिदं सम्प्रेष्य सूचितोऽहं प्रकाशनाय। तत्रैवाध्यापयता च ममानुजेन डॉ० गजाननमिश्रेण च भूयसाऽऽग्रहेण महत्त्वपूर्णस्यास्य स्तोत्ररत्नस्य भाषानुवादपूर्वकं यथाशीघ्रं मुद्रापयितुमागृहीतोऽहम्। इत्यमाग्रहं महत्त्वमुपयोगित्वञ्च विचार्य विद्यापीठस्यानुसन्धान-विभागीयायां त्रैमासिक्यां पत्रिकायां 'शोध-प्रभा'यां प्रकाशनाय मया निर्णीतं तथाऽपृथग् ग्रन्थरूपेण प्रकाशनमपि काङ्क्षितम्।

अस्य भारत-भाषानुवादेन सह सम्पादनं विधाय डॉ० रुद्रदेव-त्रिपाठिना यः परिश्रमो विहितस्तदर्थं स महानुभावः धन्यवादानर्हति। इदं स्तोत्रं 'शोध-प्रभा'याः श्रीमती-इन्दिरा-गान्धी-श्रद्धाञ्जलि-विशेषाङ्के तथा स्वतन्त्रग्रन्थरूपेणापि प्रकाशितं विद्यते। अहमस्य स्तोत्रस्य पाण्डुलिपि-प्रदानेनोपकृतवतां डॉ० शिवन रैणा-महानुभावानां हृदयेनाभारंस्वीकरोमि तथा-ऽन्येभ्यः कृपालुभ्यष्टीकाटिप्पण्यनुवादादि-विधायकेभ्यः कृतज्ञतां विज्ञाप्य सर्वजनमङ्गलाय स्तोत्र-मिदं पाठकेभ्यः समर्पयामि।

श्री ला० ब० शा० के० सं० विद्यापीठम्
शहीदजीतसिंहमार्गः,
नवदेहली

विद्वदाश्रवः
डॉ० मण्डनमिश्रः
प्रधानसम्पादकः

प्राक्-कथनम्

अघोरभट्टारकभक्ता अत्राद्यत्वेऽप्यसङ्ख्याता उपलभ्यन्ते। आसीत् कोपि समयो यदात्र कश्मीरभूमौ शिवोपासकाः प्रतिग्रामं प्रतिगृहं भगवन्तं महेश्वरं सम्पूज्यात्मानं कृतार्थं मन्यन्ते स्म। एषु दिनेष्वपि केचन पुण्यभाजो भक्तश्रेष्ठाः शिवोपासनायां दृढव्रता भक्त्याकाशे तारका इव विद्योतन्ते। ये खलु पूजारम्भे समाप्तौ च बहुरूपगर्भाख्यं स्तोत्रमिदमाशुतोषिणः श्रीस्वच्छन्द-नाथस्य प्रीत्युत्पादकं परमया भक्त्या समाहितेन मनसा पठन्त आत्मानं पुण्यभाजं मन्यन्ते।

वृद्धस्वच्छन्दतन्त्रान्तर्गतमेतद् बहुरूपगर्भाख्यं स्तोत्रमतीव गूढार्थपूर्णमदीक्षितस्य दुर्बोध्यं चास्ति। श्रद्धायुक्ता भक्ता विनैतत्स्तोत्रं कामप्युपासनां पूजां वाऽपुष्कलां मन्यन्ते। येषु राजानक-शम्भुनाथः परोपकृतितत्परो भक्तप्रवर—इदं स्तोत्रं सद्यः फलप्रदं मुद्रयित्वा भक्तजनोपकाराय प्रकाशनार्थं प्रैरयत्।

श्रीमद्-अनन्तशक्तिरित्याख्येन शैवागमनिष्णातेन विदुषा स्तोत्रमिदं विषमपद-सङ्केताख्यया टीकया समलङ्कृतमस्ति। अनुमीयते चासौ टीकाकर्ता शैवशास्त्राभिज्ञो नानाशास्त्रनिपुणश्चासीत्। टीकेयमस्पष्टार्थप्रकाशनकरी भक्तजनप्रमोदावहा च राजते।

किञ्चानन्तनागस्थ-महाविद्यालयप्राध्यापकेन श्रीबलजिन्नाथशास्त्रिणा शैवागमविशा-रदेनेदं स्तोत्रं टिप्पण्या विभूषितमस्ति।

श्रीमन्तोऽनन्तशक्तेः कालो यद्यप्यज्ञातोऽस्ति, तथापि तस्य नानाशास्त्रज्ञानेन ज्ञायते १६०, ईस्वीतः पूर्वमेवासौ कश्मीरानलञ्चकार जनुषा।

तदेतत्स्तोत्रं मयापि निरीक्षितं लोकोपकारार्थं यत्र कुत्रापि मत्प्रणीतटिप्पणीयुक्तञ्च भवति।

अत्र :—(क) चिह्निता श्रीमदनन्तशक्तिरचिता टीका।

(ख) चिह्निता श्रीबलजिन्नाथशास्त्रिरचिता टिप्पणी।

(ग) चिह्निता मया रचिता टिप्पणी।

(घ) चिह्निता श्रीराजानक-शम्भुनाथरचिता चेति स्वच्छन्दशास्त्रावलोकनपूर्वकं टिप्पण्या स्तोत्रमिदं समलङ्कृतमस्ति।

प्रशंसनीयश्चायं राजानकशम्भुनाथः शिवभक्तिवशीभूतमानसो भक्तेषु स्तोत्रमिदं महता-ऽऽयासेन संस्कृत्य डॉ० मण्डनमिश्र (श्रीलालबहादुरशास्त्रीकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठस्य प्राचार्य)—

महाभागान् सम्प्रेरितवान् तैश्च स्तोत्रस्यास्य महत्त्वमनुभूयास्य भाषानुवादाय डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी (प्राध्यापकः शोधप्रकाशन विभागाध्यक्षश्च) निर्दिष्टः स च महानुभावो 'भारत-भाषानुवादेन समलङ्कृत्य स्वीयेनैव समुचित-सम्पादनेन सपरिश्रमं भैरव-भक्तिमाहात्म्य-तत्त्व-परिपूर्णया विमर्श-वेदिकया सहैतत् प्रकाशितवान् ।

महानुभावैर्विद्वद्भिः काचित् त्रुटिरत्रोपलभ्यते चेत् सा क्षन्तव्या ।

आशासेऽहमनेन पुस्तकेन भक्तजनाः शुद्धं पाठं विज्ञाय पठित्वा चोपकृतिमन्तो भवेयु-रिति ।

विदुषामनुचरः
गोविन्दभट्ट शास्त्री

भूमिका

(१) "शैवदर्शन" मुख्यतः काश्मीर में ही सर्वाधिक फला-फूला है, इसलिए इसे 'काश्मीरी शैवदर्शन' या 'काश्मीरी शैवागम' कहा जाता है। शैवदर्शन दो भागों में विभक्त है : (i) स्पन्दशास्त्र तथा (ii) प्रत्यभिज्ञा शास्त्र। किन्तु व्यवहार में प्रत्यभिज्ञा शब्द से उक्त दोनों का बोध होता है। वर्तमान में शैवदर्शन के लिए प्रत्यभिज्ञा शब्द विशेष प्रचलित है। प्राचीन साहित्य में इसके लिए 'त्रिकदर्शन तथा माहेश्वर दर्शन' आदि नाम भी मिलते हैं।

(२) शैवदर्शन के अनुसार महेश्वर अपनी पञ्चशक्ति अर्थात् चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान, क्रिया को पञ्चमुख के रूप में प्रकट करते हैं। शिव के इन्हीं पञ्चमुखों के नाम हैं :—ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव और अघोर। शिव के इन पांच मुखों से ही समस्त तन्त्रशास्त्र का आविर्भाव हुआ। इन पांच मुखों के संघटन से ही—अभेद, भेदाभेद और भेद दशायें प्रकट होती हैं। शिव की भेदप्रधान दशाएँ दस हैं, भेदाभेद-प्रधान अठारह हैं तथा अभेद-प्रधान चौंसठ हैं। उक्त अवस्थाओं से ही उतने तन्त्रों का आविर्भाव हुआ। अतः उन्हें क्रमशः 'शिवतन्त्र, रुद्रतन्त्र तथा भैरवतन्त्र' कहा जाता है।

(३) शिव की अभेद-प्रधान चौंसठ दशाओं का सम्बन्ध भैरवतन्त्र से है, उन्हें 'भैरवावस्था' भी कहा जाता है। शैवदर्शन के अनुसार शिव और शक्ति सदामिलित और अद्वय हैं। शक्ति ही वहिर्मुख होने पर शिव है, और शिव ही वहिर्मुख होने पर शक्ति है। दोनों भाव सनातन हैं। शिव के ईशान, तत्पुरुष तथा सद्योजात, इन तीन मुखों की उद्भूत व उद्भवोन्मुख दो-दो अवस्थाएं होती हैं। इन अवस्थाओं के अनुरूप शिव के तीन मुखों से छह तन्त्रों का आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार ईशान, और तत्पुरुष, ईशान और सद्योजात तथा सद्योजात एवं तत्पुरुष से तीन अन्य तन्त्रों का अवतरण हुआ। इन तीनों के मिलन से एक अन्य तन्त्र अवतरित हुआ। इस प्रकार (६+३+१=१०) कुल दस तन्त्र माने जाते हैं। इसी प्रकार भेदाभेद-प्रधान अवस्था से अठारह रुद्रतन्त्र, तथा अभेद-प्रधान से चौंसठ भैरवतन्त्रों का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार एक ही समय में उक्त मुखों के लय होने पर आगमों का आविर्भाव हुआ। इन्हें ही 'शिव शक्तिसंयोगरूप' तथा 'अद्वय-स्वभाव-विशिष्ट' कहा गया है। प्रस्थानक्रम से भैरवागमों के भैरवाष्टक, यामलाष्टक आदि आठ अष्टक माने गये हैं। इनमें भैरवाष्टक के आठ प्रकार ये हैं—स्वच्छन्द भैरव, चण्ड भैरव, क्रोध (क्रुद्ध) भैरव, उन्मत्त भैरव, असितांग भैरव, महोच्छुष्म भैरव तथा कङ्कालभैरव।

(४) आगम साहित्य में स्वच्छन्द भैरव को 'स्वच्छ भैरव' 'वृद्ध भैरव' तथा 'शिखा-स्वच्छन्द भैरव' भी कहा जाता है। तन्त्रसाधना की दृष्टि से स्वच्छन्द भैरव भट्टारक हैं। इनकी शक्ति या नायिका कुब्जिका हैं। अतः आगम में इन्हें कुब्जिकेश्वर भी कहा गया है।

आगम ग्रन्थों में ये कुब्जिका एवं कुब्जिकेश्वर स्वच्छन्द भैरव ३२-३२ प्रकार के कहे गये हैं। (कुब्जिकामत तथा भैरवतन्त्र, जो मुख्यतः नेपाल में प्राप्य हैं, इस विषय पर विशेष सामग्री प्रदान करते हैं) उपासना की दृष्टि से विभिन्न आम्नाय से सम्बद्ध विशिष्ट भट्टारक माने गयेहैं। जैसे दक्षिणाम्नाय के महाकाल, उत्तराम्नाय के संहार भट्टारक तथा पूर्वाम्नाय के सदाशिव भट्टारक आदि। स्वच्छन्द भैरव पश्चिमाम्नायके भट्टारक हैं। अत एव ऐहिक फल प्राप्तिके लिए स्वच्छन्द भैरव की उपासना की जाती है। मुख्यतः कश्मीर ही स्वच्छन्दभैरव की उपासना का क्षेत्र रहा है, जहां इन्हें अघोर भट्टारक भी कहा जाता है। सामान्यतः स्वच्छन्दभैरव की उपासना के दो प्रकार हैं – (i) न्यास आदि युक्त तन्त्रोक्त एवं (ii) स्तवादि से युक्त। आगम ग्रन्थों में स्वच्छन्दभैरव की साधना के लिए स्तोत्र, कवच, अर्गला, कीलक, सहस्रनाम आदि सम्पूर्ण साहित्य उपलब्ध है।

(५) बहुरूपगर्भस्तोत्र नामक प्रस्तुत ग्रन्थ कश्मीर के सुप्रसिद्ध साधक विद्वान् की वहुमूल्य रचना है। परम्परा के अनुसार कश्मीर में शिवोपासना के प्रारम्भ तथा समाप्ति पर इस स्तोत्र का पाठ आशुफलप्रद एवं ऐहिक इच्छापूर्ति का अपूर्व साधक माना जाता है। स्वच्छन्दनाथ के साधकों के लिए अत्यधिक उपादेय यह स्तोत्र अत्यधिक रहस्यपूर्ण एवं गूढार्थ से परिपूर्ण है। अत एव इसके विषम पदों से सम्बद्ध रहस्य को उद्घाटित करनेवाली चार विद्वानों की चार विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियों से अलङ्कृत करके इसे और भी मूल्यवान् बना दिया गया है।

डॉ० शि० कृ० रैना ने परमोपासक विद्वान् अपने पितामह की धरोहर स्वरूप इस कृति को उनके स्मृति-श्राद्ध के रूप में विद्यापीठ द्वारा मुद्रित करवाकर साधकजगत् का महदुपकार किया है। अतः निःसन्देह डॉ० रैना साधुवाद के पात्र हैं।

महाशिवरात्रि १९८२
अलवर (राज०)

श्याम शर्मा वाशिष्ठ
एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ

बहुरूप-गर्भ-स्तोत्र : एक अनुचिन्तन

[सम्पादकीय]

☐ स्तोत्र साहित्य और उसका विराट् रूप

वैदिक-वाङ्मय से लौकिक प्रार्थनाओं अनन्तानन्त प्रकारों से अनन्तानन्त ऋषि-महर्षियों द्वारा दृष्ट, श्रुत, प्रतिबोधित एवं निर्मित स्तोत्र साहित्य की परम्परा हिमालय के शिखर से बहने वाली कलिमलनाशिनी भगवती भागीरथी के समान परमपावन, सदातोया, अमृत नीरा, निरर्गलवाहिनी तथा अनन्तानन्तधारावती तो है ही, साथ ही उसका स्वरूप सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष और सहस्रपाद भी है। कोटि-कोटि कमनीय कल-कण्ठों से कूजित हमारा विशाल स्तोत्र-साहित्य जन-मन की जागरूक-जीवनी का जगमगाता ज्योतिर्दीप है और उसका प्रकाश गहन अज्ञान, अहङ्कार, अस्मिता और आर्तियों के अन्धकार को दूर करता हुआ केवल बहिर्लोक को ही द्योतित नहीं करता है, अपितु अन्तर्लोक को भी उद्भासित करता है। उसकी शक्ति अपरिमेय है, वह मात्र आगत आसुरीभावों को ही नष्ट नहीं करता है, अपितु अनागत-आगामी दुर्विचारों को भी निर्मूल बना देता है। इन्हीं सब कारणों से 'स्तोत्र-साहित्य का विराट् रूप' उस परम-पिता, परमात्मा के विराट् रूप के समान ही वन्दनीय है, अभिनन्दनीय है।

☐ स्तोत्र विद्या : आगमिक उदात्त अवदान

वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, पुराण, उपपुराण एवं अन्यान्य ग्रन्थों के माध्यम से सम्प्राप्त स्तोत्र-साहित्य आगमों/तन्त्रों में सामान्य भक्ति, निवेदन, गुण, कर्म, स्थानावतारादि वर्णनों तक ही सीमित न रहकर अपने उदात्त अवदान के रूप में 'स्तोत्र-विद्या' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। 'स्तौतीति-स्तोत्रम्' और 'स्तूयते अनेनेति स्तोत्रम्' की धारणा से ऊपर उठ कर आगमिक-स्तोत्र-वाङ्मय ने 'विद्या' का रूप प्राप्त किया है, जिसमें 'वेत्ति, विंदन्ति, विद्यते' आदि वेद-पदार्थ-बोधक अर्थों की समष्टि समाहित है और तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र-मूलक साधना पद्धति द्वारा साध्य प्रक्रिया के प्रेरक सूत्रों का सुमनोरम सङ्कलन है। तान्त्रिक मन्त्रों के अर्थों में प्रयुक्त 'विद्या' पद के साथ स्तोत्रों ने भी अपनी मान्त्रिकता को मूर्त्तरूप में धारण कर लिया है। इसी दृष्टि से तन्त्र-प्रोक्त स्तोत्र 'माला-मन्त्र' के रूप में सर्वमान्य है तथा उन्हें हम 'विद्या'-पद से समृद्ध मानते हैं। वस्तुतः यह उचित भी है, क्योंकि मन्त्र के मननजन्य त्राणात्मक धर्म का उसमें पूर्णतः आन्नास है तथा उनमें भूयोभूयः पाठात्मिका आवृत्ति से देवता प्रसन्न होकर सकाम सिद्धि प्रदान करते हैं। अतः यह आगमों का एक उदात्त अवदान ही है।

☐ स्तोत्रों के प्रकार और 'नाम-स्तोत्र'

आचार्यों ने स्तोत्रों के प्रकारों का विवेचन करते हुए मुख्यतः १-द्रव्य स्तोत्र, २- कर्म स्तोत्र, ३- विधि स्तोत्र तथा ४- अभिजन स्तोत्र ऐसे चार प्रकार निर्धारित किये हैं और उनमें १- आराधनात्मक, २- अर्चनात्मक एवं ३- प्रार्थनात्मक विषयों का प्रत्येक में समावेश मानकर उसके १२ प्रकारों का निर्देश किया है। किन्तु ये प्रकार यहीं आकर रुके नहीं, अपितु उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये। तान्त्रिक प्रक्रिया, साहित्यिक प्रक्रिया और विविधान्य-विषयगर्भ-प्रक्रिया के कारण इनके अनन्त प्रकार बन गये।[1] इन्हीं में इष्टदेव के विभिन्न नामों को मन्त्र रूप में अथवा गुण-कर्मादिवर्णनात्मकरूप में जिन स्तोत्रों को प्रस्तुत किया गया वे 'नाम-स्तोत्र' कहलाते हैं।

☐ नाम-स्तोत्र : एक संक्षिप्त विश्लेषण

ऋग्वेद संहिता में स्तुति करने वाले भक्तजनों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि—

> तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
> आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥
>
> (ऋ० सं० १/१५६/३)

"हे स्तुति करने वालों! अनादि सिद्ध, नित्य, यज्ञरूप से उत्पन्न उसी विष्णु को अपनी ज्ञानशक्ति के अनुसार स्तोत्रादि से प्रसन्न करते रहो। यह चारों पुरुषार्थों का देने वाला है—ऐसा जानते हुए उस महानुभाव 'विष्णु' के नाम का सङ्कीर्तन करो।"

तथा उपर्युक्त मन्त्र के 'सायण' प्रतिपादित उपर्युल्लिखित अर्थ को और सरल करते हुए अन्य भाष्यकार 'नारायणतीर्थ' ने कहा है कि—

"प्रसिद्ध जगत् के कारण एवं वेदान्त वाक्यों के प्रतिपाद्य परमात्मा के गुणों के अनन्त होने पर भी अपनी मति के अनुसार जन्म भर स्तुति करते रहो। स्तुति के असम्भव होने पर परमात्मा के नाम का ही स्मरण करो।"

इसके अनुसार नाम-स्तुति का भी अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। शाण्डिल्य सूत्र के प्राचीन भाष्यकार स्वप्नेश्वर ने भी लिखा है कि "तत्र नाम्नामभिधानं कीर्तनम्" (अ० २, आह्निक २, सूत्र ९८) अर्थात् नामों का कथन-स्मरण ही कीर्तन-भक्ति है। सम्भवतः इन्हीं विशेषताओं के कारण 'नामस्तोत्र' प्रारम्भ हुए जिनमें सङ्ख्याश्रित एवं अनियतनामाश्रित स्तोत्र बने। सहस्रनाम, त्रिशती, अष्टोत्तर शतनामादि इसके उदाहरण हैं। नाम योजना में १- गुण, २- रूप, ३- लीला आदि के वर्णन से युक्त नाम सङ्कलित किये जाते हैं। 'मीमांसा दर्शन' ने 'गुणगुणि-सङ्कीर्तन स्तुतिः' (न्यायसुधा, तन्त्रवार्तिक टीका) कहकर ऐसी नामावली को ही स्तुति कहा है। ब्रह्मयज्ञ में जो नियमित वेदपाठ की परम्परा थी उसकी नियमगत कठिनाई को दूर करने के लिए शुचि

---

१. विशेष जानने के लिए देखिये—शब्दालङ्कार साहित्य का समीक्षात्मक सर्वेक्षण (ले० डा० रुद्रदेव त्रिपाठी)।

नमक महर्षि के पुत्र शौच और अह्नि माता के पुत्र आह्नेय ने ब्रह्मयज्ञ के नियमों में परिवर्तन किया[1] और चलते-फिरते, बैठते-उठते ब्रह्मयज्ञ करने की अनुमति दी।[2] ऐसी सुविधाओं के कारण भी नामस्तुति का महत्त्व बढ़ गया। इतना ही नहीं, कलियुग में नामजप की महिमा की प्रधानता भी शास्त्रों में पर्याप्त कही गई। यथा—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः॥ (?)
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ (नारद पुराण)

तपश्चर्तुमशक्तश्चेद् धनवान् दानमाचरेत्।
उभयोरप्यशक्तः सन् नामसङ्कीर्तनं चरेत्॥ (इत्यादि)

(शाण्डिल्य स्मृति ९५)

प्रस्तुत बहुरूप-गर्भ स्तोत्र

नाम स्तोत्रों की परम्परा में दो पद्धतियां प्राप्त होती हैं १-प्रथमान्त नामावली और २-चतुर्थ्यन्त एवं नमोऽन्त नामावली। प्रस्तुत स्तोत्र में जो नाम हैं वे चतुर्थी विभक्ति और नमः पद से युक्त हैं तथापि यहां प्रत्येक के नाम के साथ नमः पद की योजना न होकर १—कहीं एक पद्य में आये नामों के साथ, २—कहीं दो पद्यों में आये नामों के साथ, ३—कहीं एक ही पद्य के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में दो बार, और ४—कहीं एक ही पद्य में तीन बार भी नमः पद जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार नाम-सङ्कलना में द्व्यक्षर नाम से पञ्चदशाक्षर-षोडशाक्षर नाम तक की योजना है। नामों के माध्यम से भगवान् बहुरूप के गुण-कर्मादि की अभिव्यक्ति के साथ ही कहीं-कहीं गम्भीर तान्त्रिक-सङ्केतकारी शब्द भी संयोजित हैं। प्रायः सभी नामों से शिवस्वरूपता स्पष्ट झलकती है। नाम-गणना से ऐसा प्रतीत होता है कि स्तोत्र में किसी विशेष नाम-संख्या को महत्त्व नहीं दिया है तथापि उपासक इसकी नामावली नमोऽन्त और आदि में प्रणवादि लगाकर अर्चना कर सकता है क्योंकि 'गरुडपुराण' का कथन है कि—

प्रणवादि-नमोऽन्तं च चतुर्थ्यन्तं च सत्तम।
देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः॥

उपासना-शास्त्रों में नामार्चना के अनेकविध विधान हैं, जिनमें सृष्टि, स्थिति, संहार क्रम, त्रिक-क्रम, लोम-विलोम-क्रम आदि प्रकारों से नामावली के पद्यों का पाठ तथा पृथक् नाम-मन्त्र-पाठ विहित है। खड्गमाला-विधान के अनुसार नाम के साथ नमः के अतिरिक्त सम्बद्धयन्त

---

१. ग्रामे मनसा स्वाध्यायमधीयीत। दिवा नक्तं वा इति ह स्माह शौच आह्नेय० इत्यादि (तैत्तिरीय आरण्यक, २/१२)।

२. य एवं विद्वान् महारात्र उषस्युदिते व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानोऽरण्ये ग्रामे वा वसन् स्वाध्यायमधीते सर्वाल्लोकान् जयति सर्वाल्लोकाननृणो सञ्चरति। (वही-२/१५)।

स्वाहान्त, तर्पयामि पदान्त, जयजयपदान्त तथा मन्त्रसम्पुटित आदि प्रयोग भी किये जाते हैं, उनका भी इन नामों के साथ प्रयोग किया जा सकता है।[1]

☐ 'भैरव' शब्द की निरुक्तियां एवं विभिन्न अर्थ

'बहुरूप-गर्भ-स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध इस स्तोत्र को विनियोग में 'अघोर भट्टारक सकल-स्वच्छन्द भैरव-मन्त्र (स्तोत्र)' कहा है तथा इसके ऋषि 'कालाग्निरुद्र भैरव' दर्शित हैं। श्रीस्वच्छन्दनाथ शिव की यहाँ स्तुति की गई है जो कि स्वच्छन्द भैरव के नाम से मान्य हैं। अष्टादश भुजाधारी, पञ्चमुख, रुद्र के पृष्ठ पर विराजमान और गौर वर्णशाली तथा स्वसमान-स्वरूपा भगवती स्वच्छन्द शक्ति को अङ्क में लिये भगवान् बहुरूप-भैरव इसमें स्तुत हैं। शास्त्र-कारों ने भैरव पद की विभिन्न निरुक्तियों के द्वारा भैरव भगवान् को साक्षात् ब्रह्म एवं अन्यान्य अनेक स्वरूपशाली सिद्ध किया है, जिसका विचार इस प्रकार है—उपनिषदों में 'निष्कल-ब्रह्म' के रूप में रुद्र की स्तुति करते हुए उसे भैरव-स्वरूप बतलाया है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

कठरुद्रोपनिषत् २/३/३

भीषाऽस्माद् वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

(तैत्ति० २/८/१)

महद् भयं वज्रमुद्यतम्। (कठोपनिषत् २/३/२)

यह रुद्र का रौद्ररूप है। और 'नमः शम्भवाय च०' 'या ते रुद्र शिवा तनू०' तथा 'असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्राः०' इत्यादि यजुर्वेदीय मन्त्रों से रुद्र के सौम्य रूप का स्मरण हुआ है। नमकानुवाक में प्रोक्त शिवनाम त्रिशती एवं उसी के अन्त में 'नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषाम्' इत्यादि मन्त्रों से उनके आम्नायात्मक रूपों का जो उल्लेख हुआ है वह वस्तुतः भगवान् बहुरूप का ही वर्णन है। यही बहुरूपता इनके ब्रह्मत्व की प्रतिपादिका है क्योंकि स्वयं बृंहण तथा भक्तों का अभिबृंहण करना ही इनका कार्य है। वेदों में भीम, घनाघन, मन्यु, सद्योजात, वामदेव आदि जो नाम हैं वे भी बहुरूप भैरव के ही विभिन्न स्वरूपात्मक नाम हैं। अतः निष्कल ब्रह्म और सकल ब्रह्म दोनों की स्तुति में भैरव की व्याप्त बहुरूपता प्राप्त होती है। वैसे आचार्यों ने १- भैर्भीमादिभिः साधनैरवतीति भैरवः। २- बिभेति क्लेशो यस्मादिति भैरवः। ३- भी रौतीति भीरुः, भीरुरेव भैरवः। ४- भीर्भयङ्करो रवो यस्य स भैरवः। ५- भैरं दुःखसमूहं वातीति भैरवः। ६- भिया सर्वान् रवयतीति भैरवः। ७- भीरूणां समूहो भैरवः। ८- भरति विश्वमिति भैरवः। ९- बिभर्ति धारयति पुष्णाति रचयतीति भैरवः। १०- विश्वस्य

---

१. इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये देखें—श्री बटुक भैरवसाधना (ले० डा० रुद्रदेव त्रिपाठी)।

भरणाद् रमणाद् (र वणाद्) वमनाच्च भैरवः इत्यादि व्युत्पत्तियों के द्वारा भगवान् भैरव को सृष्टि-स्थिति-संहृतिकर्ता, सर्वान्तर्यामी आदि व्यक्त किया है। ऐसे बहुरूप-प्रभु-मन्त्र-तन्त्रात्मक प्रस्तुत स्तोत्र का पाठ, अर्थ का मनन एवं तत्व का निदिध्यासन करके सभी लाभान्वित हों— यही कामना है।

इस दृष्टि से पं० श्रीशम्भुनाथजी राजदान ने अत्यन्त परिश्रम से इस स्तोत्र का संग्रह किया तथा इस पर प्राचीनकाल में लिखी हुई पं० श्री अनन्त शक्ति की 'विषम-पद-सङ्केत' नामक टीका को प्राप्त कर उसका उद्धार किया। उनके मन में स्तोत्र की रहस्यात्मकता के और स्पष्टीकरण की भावना उत्पन्न हुई तो उन्होंने शैवदर्शन के मर्मज्ञ पं० बलजिन्नाथजी को प्रेरित कर एक संक्षिप्त टिप्पणी भी लिखवाई। साथ ही उन्होंने पं० श्रीगोविन्द भट्टजी से भी आग्रह किया कि वे भी स्तोत्र की गरिमा के अपने गूढ़-विचारों को 'टिप्पणी' के रूप में अङ्कित करें। तदनुसार एक और लघु 'टिप्पणी' उन्होंने लिखी। वे इतना होने पर भी सन्तुष्ट नहीं हुए और गुरुकृपा से तथा इष्टकृपा से प्राप्त कतिपय विशिष्ट रहस्य सर्वसाधारण को समझाने की दृष्टि से स्वयं उन्होंने भी इस पर एक 'टिप्पणी' की रचना की।

इस प्रकार एक लघु किन्तु महत्त्वपूर्ण स्तोत्र के विभिन्न तान्त्रिक तत्त्वों को कुछ अंशों में समझाने का प्रयास इन टिप्पणियों के द्वारा हुआ है।

काश्मीर-निवासी पं० श्री शम्भुनाथजी राजदान, अपने जीवनकाल में "जम्मू-कश्मीर-ब्राह्मण महामण्डल" के वर्षों तक अध्यक्ष रहे। व्यवसाय से वे संस्कृत के निष्ठावान् शिक्षक तथा व्यवहार से कश्मीर के लब्ध-प्रतिष्ठ कर्मकाण्डी, ज्योतिर्विद् तथा समाज सेवी रहे। उनका स्वर्गवास हुए अब १६-१७ वर्ष हो चुके हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल के अन्तिम चरण में 'श्रीबहुरूपगर्भ-स्तोत्र' का संकलन एवं आलेखन किया था। उनकी यह साध थी कि यह स्तोत्र 'परजन-हिताय' प्रकाशित हो और कश्मीर में 'बहुरूपगर्भ' की जो सम्पन्न परम्परा है, उसे व्यापक प्रचार-प्रसार मिले।

इसी लोक-मङ्गल की भावना से श्री शम्भुनाथजी के विद्वान् पौत्र डॉ० शिबन कृष्णजी रैणा (हिन्दी-विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान) ने अपने पूज्य पितामह की अभिलाषा को पूर्ण करने में सहयोग की कामना करते हुए अपने सहकर्मी मित्र डॉ० गजानन मिश्र (डा० मण्डन मिश्र जी के अनुज) की प्रेरणा से विद्यापीठ के प्राचार्य एवं शोध-प्रभा के प्रधान सम्पादक डॉ० मण्डन मिश्र को प्रस्तुत स्तोत्र और इस पर निर्मित चारों टीका-टिप्पणियों की पाण्डुलिपि मुद्रापणार्थ दी एवं साथ ही भगवान् बहुरूप का एक सुन्दर चित्र भी दिया।

ऐसे महिमाशाली स्तोत्र का प्रकाशन स्वीकृत करते हुए प्राचार्यजी ने प्रसंगवश यह इच्छा व्यक्त की कि 'इस महत्त्वपूर्णस्तोत्र का और इस पर रचित टिप्पणियों का सारभूत अर्थ यदि हिन्दी भाषा में हो जाए तो यह और भी अधिक उपयोगी होगा।' उसी के अनुसार यह अनुवाद कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न हुआ। मैंने अनुवाद को 'भारत-भाषाऽनुवाद' की संज्ञा दी है तथा यथा-मति चारों टिप्पणियों के सारांश को इसमें समाविष्ट करने का पूरा प्रयास किया है। अनुवाद-

कार्य यथासमय पूर्ण हो गया था, किन्तु मेरे जयपुर-स्थानान्तरित हो जाने के कारण मुद्रण में विलम्ब हो गया।

अब यह स्तोत्र अपने गौरवपूर्ण स्वरूप के साथ स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में तथा 'शोध-प्रभा' के श्रीमतीइन्दिरागान्धी-श्रद्धाञ्जलि-विशेषांक' के साथ प्रकाशित हो रहा है, इसकी हमें प्रसन्नता है। इसके प्रारम्भ में श्री गोविन्द भट्टजी और डा० श्याम शर्मा वाशिष्ठ ने अपने स्तोत्र सम्बन्धी महनीय विचारों से इसे अलङ्कृत किया है, तदर्थ हम उनके आभारी हैं। आदरणीय प्राचार्य डॉ० मण्डन मिश्रजी (प्र० सम्पादक) की उदारदृष्टि से इस स्तोत्र के भारत-भाषानुवाद और विमर्श-वेदिका लेखनपूर्वक सम्पादन का कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न हुआ, तदर्थ मैं उनका आभारी हूं। मैंने इस स्तोत्र के समान ही कश्मीर-साधना-परम्परा में प्रथित धर्माचार्य विरचित 'लघुस्तव' को भी मूलरूप में इसके साथ प्रकाशित किया है जिससे शिवशक्ति की सामरस्य भक्ति का आनन्द प्राप्त हो सकेगा। अन्त में 'अपराध क्षमापन स्तोत्र' भी मुद्रित किया है। विश्वास है इस लघुकृति से साधक समुदाय लाभान्वित होगा! 'भगवान् श्री बहुरूप सभी का सार्वत्रिक मङ्गल करें' इसी कामना के साथ मैं यह कृति राजानक पं० श्रीशम्भुनाथजी को समर्पित करता हूं।

अनेकै रूपैः स्वां तनुमतनुरूपां प्रकटयन्,
जगत् सृष्ट्या स्थित्या तदनु हृतिवृत्या च नटयन्।
स्वभक्तानामन्तर्निहितसकलेष्टानि घटयन्,
शिवः शास्ताऽनूपो वसतु बहुरूपो हृदि सदा॥

—रुद्रदेव त्रिपाठी
सम्पादक

॥ ॐ नमो विघ्नहन्त्रे ॥

विषमपदसङ्केताख्यया टीकया तथाऽन्य-टिप्पणीभिः
सङ्कलितं भारत-भाषानुवाद-भूषितञ्च
वृद्ध-स्वच्छन्दतन्त्र-प्रोक्तं

श्रीबहुरूपगर्भ-स्तोत्रम्

□□□

ॐ ब्रह्मादि-कारणातीतं स्वशक्त्यानन्दनिर्भरम् ।
नमामि परमेशानं स्वच्छन्दं वीरनायकम् ॥१॥[1]

[प्रणति-मङ्गल]

ॐ ब्रह्मादि देवों के कारण से रहित, स्वशक्ति के साथ आनन्द में लीन, परम-शिवस्वरूप, स्वच्छन्द वीर नामक भगवान् अघोरभट्टारक को मैं प्रणाम करता हूं ॥१॥

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
पप्रच्छ प्रणता देवी भैरवं विगतामयम् ॥२॥

[स्तोत्रावतरणिका]

किसी समय कैलास-शिखर पर विराजमान प्रसन्नचित्त, देवाधिदेव, जगद्-गुरु, श्रीस्वच्छन्दभैरव को प्रणाम करके भगवती जगदम्बा ने उनसे पूछा ॥२॥

श्रीदेव्युवाच

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु समयोल्लङ्घनेषु च ।
महाभयेषु घोरेषु तीव्रोपद्रवभूमिषु ॥३॥
छिद्रस्थानेषु सर्वेषु सदुपायं वद प्रभो ।
येनायासेन रहितो निर्दोषश्च भवेन्नरः ॥४॥

श्रीदेवी ने कहा—

हे प्रभो ! सभी प्रकार के प्रायश्चित्त, समय (शास्त्र-आचार) का उल्लङ्घन,

---

१, टीकाकार एवं टिप्पणीकारों ने इन प्रारम्भिक पद्यों की टीका नहीं की है। (सम्पादक)।

तीव्र उपद्रवों की स्थिति तथा सर्वविध दोषस्थानों के विद्यमान रहने पर भी साधक सरलता-पूर्वक उन दोषों से मुक्त होकर साधना कर सके ऐसा कोई उत्तम उपाय बतलाइये ॥३-४॥

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि परं गुह्यं रहस्यं परमाद्भुतम्।
सर्वपाप-प्रशमनं सर्वदुःख-निवारणम् ॥५॥
प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु तीव्रेष्वपि विशोधनम्।
सर्वच्छिद्रापहरणं सर्वार्ति-विनिवारकम् ॥६॥
समयोल्लङ्घने घोरे जपादेव विमोचनम्।
भोग-मोक्षप्रदं चैव सर्वसिद्धि-फलावहम् ॥७॥

श्रीभैरव ने कहा—

हे देवि! परम गुप्त, परम अद्भुत रहस्यरूप, सर्वविध पापों का शमन करनेवाला, सर्व दुःखों का निवारक, सभी प्रकार के तीव्र अथवा सामान्य प्रायश्चित्तों का शोधक, सर्वविध त्रुटियों को दूर करनेवाला, समस्त पीडाओं का निवारक, घोर समय-शास्त्र के आचार का उल्लङ्घन होने पर भी केवल जप-मात्र से ही उसके दोष से मुक्त करानेवाला, भोग एवं मोक्ष का दाता और सर्वसिद्धिप्रद ऐसे (श्रीबहुरूप-गर्भ—) स्तोत्र को मैं कहता हूं। इसे तुम सावधान होकर सुनो ॥५-६-७॥

शतजाप्येन शुद्ध्यन्ति, महापातकिनोऽपि ये।
तदर्धं पातकं हन्ति तत्पादेनोपपातकम् ॥८॥

[स्तोत्र-जप (पाठ) का माहात्म्य]

इस (मेरे द्वारा प्रोक्त-श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्र) का सौ बार जप[1] करने से जो महापापी हैं, वे भी शुद्ध हो जाते हैं। पचास बार पाठ करने से पाप का नाश होता है तथा पचीस बार पाठ करने से उपपातकों[2] का नाश होता है ॥८॥

कायिकं वाचिकं चैव मानसं स्पर्शदोषजम्।
प्रमादादिच्छया वापि सकृज्जाप्येन शुद्ध्यति ॥९॥

प्रमादवश अथवा इच्छापूर्वक किये गये कायिक, वाचिक, मानसिक और स्पर्श के कारण उत्पन्न दोष इस स्तोत्र के एक बार पाठ करने से ही दूर हो जाते हैं ॥९॥

---

१. 'यहां 'जप' शब्द का 'पाठ' अर्थ ही ग्राह्य है।
२. पातक और उपपातकों का विवेचन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में किया गया है। अतः वहीं द्रष्टव्य है।

यागारम्भे च यागान्ते पठितव्यं प्रयत्नतः ।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत् ॥१०॥

पूजा अथवा यज्ञ आदि कर्मों के आरम्भ और अन्त में इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिये तथा भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। यह स्तोत्र अत्युत्तम एवं कल्याण करनेवाला है ॥१०॥

नित्ये नैमित्तिके काम्ये परस्याप्यात्मनोऽपि वा ।
निश्छिद्रकरणं प्रोक्तमभावपरिपूरकम् ॥११॥

यह स्तोत्र किसी अन्य यजमान के लिये अथवा स्वयं के लिये किये जानेवाले नित्य, नैमित्तिक एवं काम्यकर्मों में अज्ञानवश रहजानेवाली त्रुटियों के दोषों को दूर करनेवाला और अभावों की पूर्ति करनेवाला कहा गया है ॥११॥

द्रव्यहीने मन्त्रहीने ज्ञानयोग-विवर्जिते ।
भक्तिश्रद्धा-विरहिते शुद्धिशून्ये विशेषतः ॥१२॥

मनो-विक्षेपदोषे च विलोमे पशुवीक्षिते ।
विधिहीने प्रमादे च जप्तव्यं सर्वकर्मसु ॥१३॥

द्रव्यहीन, मन्त्रहीन, ज्ञान एवं योग से रहित और भक्ति तथा श्रद्धा से शून्य कर्म करने की स्थिति में एवं शुद्धता का अभाव, मन की अस्थिरता, विपरीत क्रिया, पशु (आचार शून्य-व्यक्ति द्वारा) दृष्ट, विधिरहित तथा प्रमाद के कारण हुई त्रुटियों के होने से उत्पन्न दोषों की निवृत्ति के लिये सभी कर्मों में इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिये ॥१२-१३॥

नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः ।
नातः परतरा काचित् सम्यक् प्रत्यङ्गिरा प्रिये ! ॥१४॥

हे प्रिये ! इस स्तोत्र से बढ़कर न तो कोई मन्त्र है और न स्तोत्र। तथा इससे अधिक महत्त्ववाली कोई उत्तम प्रत्यङ्गिरा (कृत्यादिदोषशमनी विद्या) भी नहीं है ॥१४॥

इयं समयविद्यानां राजराजेश्वरीश्वरि ! ।
परमाप्यायनं देवि ! भैरवस्य प्रकीर्तितम् ॥१५॥

हे ईश्वरी ! यह स्तोत्रविद्या समस्त विद्याओं की राजराजेश्वरी है, तथा यह स्तोत्र भैरव को पूर्णतः सन्तुष्ट करनेवाला कहा गया है ॥१५॥

प्रीणनं सर्वदेवानां सर्व-सौभाग्य-वर्धनम् ।
स्तवराजमिमं देवि शृणुष्वावहिता प्रिये ॥१६॥

हे प्रिय देवी, सभी देवताओं को प्रसन्न करनेवाले तथा सर्वविध सौभाग्य को बढ़ानेवाले इस 'बहुरूपगर्भ-स्तवराज' को सावधान होकर सुनो ॥१६॥

अथ विनियोगः

अस्य श्रीमदघोरभट्टारक-सकल-स्वच्छन्द-भैरवमन्त्रस्य श्रीकालाग्निरुद्रभैरव ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः सकलभट्टारकाघोरमूर्तिर्देवता ॐ बीजं, ह्रीं शक्तिः, कुरु कुरु कीलकं, श्रीबहुरूपगर्भप्रीत्यर्थं पाठे विनियोगः ।

[स्तोत्र-पाठ के लिये विनियोग]

इस अघोरभट्टारक, सकल-स्वच्छन्द भैरव मन्त्र (स्तोत्र) के कालाग्नि-भैरव ऋषि, पङ्क्ति छन्द, सकल भट्टारक अघोरमूर्ति देवता, ॐ बीज, ह्रीं शक्ति और कुरु कुरु कीलक हैं। भगवान् बहुरूपगर्भ की प्रसन्नता के लिये पाठ का विनियोग किया जाता है।

ध्यानम्

वामे खेटकपाशशार्ङ्गविलसद्-दण्डं च वीणाष्टिके,
बिभ्राणं ध्वजमुद्गरौ स्वनिभदेव्यङ्कं कुठारं करे।
दक्षेऽप्यङ्कुशकन्दलेषु-डमरून् वज्रं त्रिशूलाभयान्,
रुद्रस्थं शरवक्त्रमिन्दुधवलं स्वच्छन्दनाथं स्तुमः ॥

ध्यान-पद्य-व्याख्या—

वयं स्वच्छन्दनाथं स्तुम इति मुख्यं वाक्यम्, शेषाणि पदानि स्वच्छन्दनाथस्य विशेषणानि। तथा हि :— रुद्रस्थं=रुद्रस्य पृष्ठ आरूढं, शरेति पञ्चसंख्या-द्योतकं पदम्। ततः शरवक्त्रं=पञ्चवक्त्रं, पञ्चशिरस्कं, पञ्चमुखम्, इन्दुवत्=चन्द्रवत्, धवलं शुभ्रं सुगौरवर्णमिति। स्वनिभा=स्वसदृशरूपा या देवी=स्वच्छन्दभट्टारकशक्तिः, साङ्के यस्य तमिति कर्मधारयपूर्वपदो बहुव्रीहिः। अङ्के स्वसदृशरूपिणीं देवीं दधानमिति तात्पर्यम्, वामे करे=हस्ते, खेटकं=तदाख्यमायुधं, पाशं, शार्ङ्गं=धनुः, विलसन्तं=शोभमानं, दण्डं, वीणा च अष्टिका चेति ते, अष्टिका=क्षुद्रघण्टा, वीणां क्षुद्रघण्टां च, ध्वजश्च मुद्गरश्चेति तावपि बिभ्राणं=धारयन्तम्। अत्र वरदमुद्रानुक्ताप्यूह्या। शास्त्रान्तरेषु स्वच्छन्दनाथस्याभयवरदमुद्रामण्डितत्वेनोपवर्णितत्वात्। किञ्च वामे हस्तनवके वस्तुनवकधारित्वं भगवतो युक्तं, शास्त्रसम्मतं च। दक्षे - दक्षिणेऽपि करे करनवके कुठारं=परशुम्, अङ्कुशं=सृणिं, कन्दलेषुम्=इक्षुकाण्डं शरत्वेन योज्यमिति भावः। शास्त्रेषु भगवत इक्षुकाण्डशरत्वस्य प्रसिद्धत्वात्। डमरुं=तदाख्यं वाद्यं, वज्रं, त्रिशूलम्, अभयम्=अभयमुद्रां दधानमिति। दक्षिणे करद्वये मुण्ड-खट्वाङ्गधारित्वमपि भगवतः श्लोकेऽनुक्तमपि तावदङ्गीकार्यमेव। शास्त्रेष्वेवमेव तस्य वर्णनात्। किञ्च स्वच्छन्दनाथस्य खड्गधारित्वमपि प्रसिद्धम्। ततः क्वापि हस्ते वस्तुद्वयधारित्वं ज्ञेयं येन केनापि करविशेषेण खड्गधारित्वमपि तस्योपपद्येत। तच्च खड्गधारित्वं मुण्डखट्वाङ्गधारित्वमिवानुक्तमप्यङ्गीकार्यमेव। ध्वजधारित्वस्य शास्त्रान्तरेऽनुक्तत्वेन ध्वजं केनापि वस्त्वन्तरेण साकमेव हस्ते धारयतीत्यूह्यम्। एवंविधशस्त्रव्रातधारिणमभयवरदं श्रीस्वच्छन्दनाथं स्तुम इति।

[ध्यान]

रुद्र के पृष्ठ पर विराजमान, पञ्चमुख, चन्द्रमा के समान गौरवर्ण, अपने ही समान स्वरूपवाली देवी स्वच्छन्द भट्टारक शक्ति जिसके अङ्क में स्थित है तथा जो बांये हाथ में—'१-खेटक, २-पाश, ३-धनुष, ४-दण्ड, ५-वीणा, ६-क्षुद्रघण्टिका, ७-ध्वज, ८-मुद्गर, एवं ९-वरदमुद्रा' तथा उसी प्रकार दाँये हाथ में—१-'परशु, २-अङ्कुश, ३-इक्षुकाण्ड बाण, ४-डमरु, ५-वज्र, ६-त्रिशूल, ७-अभयमुद्रा, ८-मुण्ड तथा ९—खट्वाङ्ग' आयुध धारण किये हुए हैं, ऐसे भगवान् स्वच्छन्दनाथ की हम स्तुति / ध्यान करते हैं।[१]

श्रीभैरव उवाच—

भैरव शब्दस्यार्थः। भैरवो-विश्वभरण-रवण-वमन-रूपः। भीरूणामभयमिति व्युत्पत्त्या संसारिणामभयदः, भयं भीः संसारत्रासस्तया जनितो रवः आक्रन्दः भीरवः ततो जातः तदाक्रन्दवतां स्फुरितः, अस्यैव भी-रवस्य संसारभयविमर्शनस्यायं शक्तिपातवशेनोत्थापः। भाति नक्षत्राणि ईरयति इति भेरः कालः तं वायन्ति-इति भैरवः कालग्राससमाधिरसिकाः योगिनः तेषामयमिति-आन्तरः स्वभावः, भिये पशुजनत्रासाय रवः —

> भरितं वाङ्मयं सर्वं रचितं विश्वमुत्तमम् ।
> वमितं ज्ञानसद्भावं तेन भैरव उच्यते ॥

शब्दराशि-समुत्थाकारादिकलाविमर्शो यासां खेचरी-गोचरी-दिक्चरी-भूचरी-चक्ररूपाणां संविद्देवीनां ताः भीरवास्तासामयं स्वामी भैरवः। इति।

> भियात् (शिवात्) सर्वं रचयति सर्वदो व्यापकोऽखिले ।
> इति भैरवशब्दस्य सततोच्चारणाच्छिवः ॥

—०—

मूल-स्तोत्रपाठः —

> ॐ नमः परमाकाशशायिने परमात्मने ।
> शिवाय परसंशान्त-निरानन्दपदाय ते ॥१॥

(क)[२] परमाकाशे परशिवात्मिकायां स्वभित्तौ शेते विश्राम्यति तदाविष्टो भवति स तथा तस्मै, अत एव परसंशान्तं न तु चित्रम्, अत एवाक्षुब्धत्वान्निरानन्दं यत् पदं तद्रूपः, अत एव परमात्मा यः परश्रेयोरूपः तस्मै नमः तं समाविशामीत्यर्थः।

(ख) शून्यतामात्र-विश्रान्तेर्निरानन्दात्मिका स्थितिः। (मा० वि० वा २.३५) ततो निरानन्दपदम् आणवोपाय उच्चाराभ्यासे साक्षात्कार्यासु षट्स्वानन्दभूमिकासु द्वितीया भूमिका। यो महाप्रकाशमयनिजस्वरूपपरामर्शात्मा शिव इत्येकोऽसामान्यः सदाशिवोऽस्ति तस्मै ॥१॥

---

१. यहाँ टिप्पणीकारों ने 'भैरव' शब्द की निरुक्ति एवं विभिन्न अर्थ दिये हैं, जिनका विचार हमने सम्पादकीय 'विमर्श-वेदिका' में दिया है। कृपया वहीं देखें।

२. यहां (क), (ख) आदि अक्षर भिन्न-भिन्न टीका टिप्पणियों के बोध के लिए निर्दिष्ट हैं।

[मूल स्तोत्र का पाठ]

श्रीभैरव बोले—

परमशिवात्मिका स्वभित्ति में विश्राम करनेवाले, परम शान्त एवं अक्षुब्ध, आणवोपायगत उच्चाराभ्यास में साक्षात्करणोय, छह आनन्द भूमिकाओं में से द्वितीय भूमिका द्वारा प्राप्य, निरानन्दपदरूप तथा महाप्रकाशमय, निजस्वरूप परामर्शात्मा सदाशिव के लिए नमस्कार हो ।।१।।

अवाच्यायाप्रमेयाय प्रमात्रे विश्वहेतवे ।
महासामान्यरूपाय सत्तामात्रैकरूपिणे ।।२।।

(क) अवाच्याय विकल्पविज्ञानागोचराय अप्रमेयाय निर्विकल्पविज्ञानापरिच्छिद्याय अत एव प्रमात्रे एकरूपाय तथात्वेऽपि प्रकाशान्यथानुपपत्त्या तदन्तर्गताय, अत एव सदेकरूपाय नमः ।

(ख) यद्यपि परमेश्वर एव विश्वसृष्टिहेतुः, तथापि परमेश्वरतावस्थायां विश्वस्य प्रकाशमात्र-रूपतयावस्थानमिति परमेश्वरस्य विचित्रसत्तामात्रस्वरूपता, इति टीकाकर्तुरभिप्रायः ।

(ग) अवाच्याय नादरूपाय "स नादो देवदेवेशि प्रोक्तश्चैव सदाशिवः" इति अमृतेशशास्त्रे । विश्वहेतवे सकलस्य वेद्यजातस्य स्वेच्छया स्वभित्तावुन्मीलकाय, सत्तामात्रैकरूपिणे "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्युक्त्या सत्स्वरूपेणावस्थिताय ।

(घ) मायादेः क्षित्यन्तस्य विश्वस्य हेतवे कारणभूताय तस्मै ।

घोषादि-दशधा शब्द-बीजभूताय शम्भवे ।
नमः शान्तोग्रघोरादि-मन्त्रसन्दर्भगर्भिणे ।।३।।

(क) घोषादिर्योऽसौ दशधा शब्दस्तस्य बीजभूताय कारणभूताय प्रसारणस्थानाय इत्यर्थः । यदुक्तं श्रीमदमृतेशशास्त्रे—

ध्वनिरूपो यदा स्फोटस्त्ववृष्टः शिवविग्रहात् ।
प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिना पूरयत् जगत् ।।
स नादो देवदेवेशि प्रोक्तश्चैव सदाशिवः ।। इति ।

नादश्च श्रीस्वच्छन्दशास्त्रे स्वस्मिन्नेव तन्त्रे —

घोषो रवः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च ।
झङ्कारो ध्वङ्कृतिश्चैव अष्टौ शब्दाः प्रकीर्तिताः ।।

इत्युद्दिष्टानामष्टानां भेदानां व्यापको नवमो महाशब्दः ।

नवमस्तु महाशब्दः सर्वेषां वाचकः स्मृतः ।
नवत्यसौ सदा यस्मात् सर्वभूतेष्ववस्थितः ।।

इत्यादिना प्रतिपाद्यः

"नादाद् विन्दुः समुत्पन्नः सूर्यकोटिसमप्रभः"।

इत्युपक्रम्य—

"स चैव दशधा ज्ञेयो दशतत्त्वफलप्रदः"।

इत्यनेन श्लोकैकदेशेन भेदनवकसमसामरस्यात्मकमुख्यविन्दुभावाभिधदशमस्वभावसद्भावमभिदधता दशधात्वमेव निरदेशि परमेशिना —इति सूक्तं घोषादीत्यादि। अथवा 'भगवानेव घोषादिर्दशविधः शब्दो नादः श्रीसदाशिवमूर्तिः, इत्याम्नायान्तरोक्तनीत्या भूतानामन्तश्चारित्वाद् वीजं कारणं तस्मै वीजभूतायेति पुनरग्न्याहितवदत्र सूत्रितमिति सूक्तं घोषादित्यादिशान्तोग्रघोरादीत्यादिग्रहणं प्रकारे तेन शान्तत्वादेस्तीव्रमन्दत्वादिना प्रकारग्रहणम्।

(ख) यथा खल्वाहिताग्निरिति शब्दस्य स्थाने 'अग्न्याहितं' इति शब्दः प्रयुज्यते, तथैव भूतवीजायेति वक्तव्ये वीजभूतायेति प्रोक्तं श्लोके।

(ग) घोषादि— दशधा शब्दवीजभूताय— नादो हि दशधा घोषादिनामा (सदाशिवः)—

"नादाख्यं यत्परं ब्रह्म सर्वभूतेष्ववस्थितम्"

इत्याम्नायोक्तरीत्या सर्वभूतानामन्तश्चारित्वाद् वीजकारणं तस्मै।

(घ) अनाहतध्वनिपरमार्थमहामन्त्रवीर्यरूपः परमेश्वरः स्वच्छन्दो निष्कलोऽशेषविश्वसामरस्यवेदनात्मना शिरोरूपाकारकलया घोरतरशक्तिचक्रक्रमेण ब्रह्मविष्णुरुद्रान् पार्थिवप्राकृतमायीयाण्डानि जागरस्वप्नसुषुप्तानि प्रमेय-प्रमाण-प्रमातॄंश्चेति सृष्टि-स्थिति-संहार-विलय-मात्रं भेदमयं जगद् दर्शयति। अतो भगवतो वहुरूपस्य पदार्थद्वारेण यावान् स्फारो व्याख्यातः सोऽस्य भगवतः सर्व एवाभेदेनैवान्तःस्थितः —इति तस्मै शान्तोग्रघोरादिमन्त्रसन्दर्भगर्भिणे, नमः —महारुद्रशक्तित्रयस्फारविवशीभवत्पाशराशिशरीरादिकल्पितप्रमातृपदप्रह्वीभावेन क्षमां विशामीत्यर्थः—

"नमस्कारः परित्यागः कार्यकरणलक्षणः"। इति। नादोऽव्यक्तध्वनिः —

श्रवणाङ्गुलि-संयोगाद् यः शब्दः सम्प्रवर्तते।
दीप्तवह्निस्वनाभासः स शब्दो घोष उच्यते ॥ इति ॥

विकल्पात्मक विज्ञान द्वारा अगोचर अथवा नादरूप, निर्विकल्पात्मक विज्ञान द्वारा अपरिच्छेद्य, प्रमाता, समस्त ज्ञेयमात्र माया से क्षिति-पर्यन्त विश्व को स्वेच्छा से स्वाश्रय में उन्मीलन करने से उसके कारणभूत, अत्यन्त असामान्यरूप प्रकाशमात्ररूप होने के कारण सत्तामात्रैकवेद्य तथा घोषादि दशविध शब्द-नाद के आदिकारण अथवा अनाहतध्वनि के परमार्थरूप महामंत्र के वीर्यरूप; स्वच्छन्द, निष्कल, अशेष विश्व की समरसता से वेद्य शिरोरूपाकार कला के द्वारा घोरतर शक्तिचक्र के क्रम से—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र; पार्थिव, प्राकृत एवं मायीय अण्ड; जागर, स्वप्न तथा सुषुप्त; प्रमेय, प्रमाण और प्रमाता के सृष्टि-स्थिति-संहार-विलयरूप भेदों के द्वारा दृश्यमान जगत् जिसमें अभेदरूप से स्थित है ऐसे भगवान् बहुरूप, शान्त, उग्र-घोरादि-मन्त्रों के सन्दर्भ से गर्भित सदाशिव के लिये नमस्कार हो ॥२-३॥

रेवतीसङ्गविस्रम्भ-समाश्लेष-विलासिने ।
नमः समरसास्वाद-परानन्दोपभोगिने ॥४॥

(क) र च ई च ते रे, रे विद्येते यस्याः सा रेवती शक्तिः तया सङ्गस्तत्र विस्रम्भेण सामरस्येन यः समाश्लेषस्तन्मयत्वं तेन विलसतीति तच्छीलः, अत एव समरसास्वाद-परमानन्दस्य परमु(मो)पभोक्ता—अनेन रहस्यार्थोऽपि कटाक्षीकृतः ।

(ख) रहस्यार्थोऽत्र कर्पूरस्तवराजादिषु वर्णितश्चर्याक्रमः। (र च ई च—इति तौ यौं, यौं विद्येते यस्याः, रेवतीति पाठोऽत्र शोभनतरः प्रतिभाति) रियावत्र बीजमन्त्रवर्णौ ।

(ग) सततसमवायिन्या शक्त्या सह यो विस्रम्भ-समाश्लेषस्तन्मयत्वं तेन विलासिने, शक्तिशक्तिमतोरभेद इत्युक्त्याऽभेदाख्यः समाश्लेषः ॥४॥

'र् च् ई च् त् र्' अथवा 'र् च् ई च् यौं' बीजमन्त्र वर्णों में निहित रे वर्णद्वय अथवा र् और य् वर्ण जिसमें विद्यमान हैं, ऐसी रेवतीशक्ति के विभ्रमरूप सामरस्य से तन्मयतारूप विलास करनेवाले तथा समरसास्वाद परमानन्द के उपभोक्ता शिव के लिये नमस्कार हो ॥४॥

भोगपाणे नमस्तुभ्यं योगेशीपूजितात्मने[1] ।
द्वय-निर्दलनोद्योग-समुल्लासितमूर्तये ॥५॥

(क) भोगपाण इति —

"भोगो भैरव इत्युक्तो हस्तः शक्तिः परा स्मृता" इति

श्रीवामेतरया शक्त्या शक्तिमत्-सामरस्यरूप इत्यर्थः, अत एव शक्तिशक्तिमल्लक्षणद्वयस्य निर्दलनमनिर्भातत्वेन अननुवर्तमानत्वेन, अत एव पारमार्थिकत्वेनेति भावः। अवस्थापनं तदुद्योगेन समुल्लासितोऽवच्छेदविरहादनामकरूपः समुल्लासो येन स तथा । अत एव परमोपदेश्यत्वात् प्राप्ता प्राप्तव्यैरपि सततमेव सेव्यायेत्यनेनानामकयोपास्यत्वमप्यस्य सूचितम् ।

(ग) भोगपाणे—भैरवशक्तिरूप !। एतेन शक्तिः शक्तिमांश्चेति द्वयस्य भेदप्रतिपत्तेः खण्डनम् ॥५॥

योगशो अथवा योगेशों द्वारा पूजित तथा शक्ति और शक्तिमान् के भेद का खण्डन-निर्दलन करने की प्रवृत्ति के कारण समुल्लासित स्फूर्तिशाली भैरवशक्तिरूप के लिये नमस्कार हो ॥५॥

शरत्प्रसरविक्षोभ-विसृष्टाखिलजन्तवे ।
नमो मायास्वरूपाय स्थाणवे परमेष्ठिने ॥६॥

(क) शरत् स्फारवान् उदितो यः प्रसरस्तस्य विक्षोभो विस्तारस्तेन विसृष्टा अखिलजन्तवो येन-

---

१. योगेशैः पूजितात्मने—इत्यपि पाठः ।

अत एव मायास्वरूपाय। तिष्ठत्यविचलाविनश्वररूपत्वेन इति स्थाणुः परमे पदे ब्रह्मादि-कारणान्यधिगम्य तिष्ठतीति परमेष्ठी।

(ग) थरदिति— शान्तस्य परमशिवस्यानुत्तरमूर्तेः जगत्सिसृक्षया यः स्फारवान् विक्षोभो जात-स्तेनाखिलजीवसृष्टिकर्त्रेऽत एव मायास्वरूपायेत्युक्तम्।

(घ) भेदोल्लासहेतुः, स्वातन्त्र्यशक्तिः, मायास्वरूपाय।

शान्त, परमशिव तथा अनुत्तरमूर्ति की जगत् निर्माणरूप इच्छा से जो विस्तृत विक्षोभ हुआ उससे अखिल जीवसृष्टि करनेवाले मायास्वरूप, अविचल; अवि-नश्वर तथा परमपद में स्थित भगवान् 'बहुरूप के' लिये नमस्कार हो ॥६॥

घोरसंसारसम्भोगदायिने स्थितिकारिणे।
कलादिक्षितिपर्यन्तं पालिने विभवे नमः ॥७॥

(क) घोरोऽत्यन्तभयानको यः संसारः संसृतिरूपो महान् कष्टः (महत् कष्टं) तस्य यः सम्भोगो-ऽनन्त-प्रकाशमयसुखदुःखाद्युपभोगस्तद्दायिने स्थितिनाम्नः परेश्वरकृत्यविशेषस्तस्य कारिणे, कलादिक्षितिपर्यन्तस्य मायीयस्य तत्त्ववर्गस्य पालिने कञ्चित्कालं स्थापयित्रेऽपि, स्वयं विभवे — विगतो भवः संसरणं यस्य तस्मै भवते नमः।

(ख) कलादीति— कलाप्रभृति पृथिवीतत्त्व-पर्यन्तं तत्त्वजातस्य मायीयस्य तत्त्ववर्गस्य पाल-यित्रेऽपि स्वयं विभवेऽसंसरणशीलाय।

(घ) स्थितिकारिणे — संसाररूपतया भाति तस्मै। न पुनश्चिद्रूपशिवव्यतिरिक्तं संसारस्य निजरूपं किञ्चित्, तस्मै स्थितिकारिणे ॥७॥

अत्यन्त भयानक संसाररूप कष्ट के अनन्त प्रकाशमय सुख-दुःखादि का उपभोग करानेवाले, स्थितिनामक परेश्वर की कृत्या-विशेष के कर्ता अथवा संसार के रूप में निजरूप को व्यक्त करनेवाले, कला से पृथिवीतत्त्व पर्यन्त मायीय तत्त्व-वर्ण के पालक और स्वल्पकाल के लिये उसके स्थापक तथा स्वयं संसरणरहित अथवा संसरणशील भगवान् बहुरूप के लिये नमस्कार हो ॥७॥

रेहणाय महामोहध्वान्तविध्वंसहेतवे।
हृदयाम्बुजसङ्कोचभेदिने शिवभानवे ॥८॥

(क) रेह प्रकाशने, रेहयति प्रकाश(य)ति इति रेहणस्तस्मै।

(घ) रेहणाय — प्रकाशात्मने अत एव हृत्कमलसङ्कोचनाशिने तथाऽज्ञानध्वान्तनाशिने च ॥८॥

प्रकाशात्मा, महामोहरूप अज्ञानान्धकार का विध्वंस करने में कारणभूत तथा हृदय-कमल को विकसित करनेवाले शिवरूपी सूर्य के लिये नमस्कार हो ॥८॥

भोग-मोक्ष-फलप्राप्ति-हेतु-योग-विधायिने।
नमः परम-निर्वाण-दायिने चन्द्रमौलये ॥९॥

(क) भोगमोक्षफलप्राप्तिहेतुयोगं विदधातीति तच्छीलः। मोक्षो विद्याविद्येश्वरत्वप्राप्ति-रूपः। परमनिर्वाणः सायुज्यप्राप्तिरूपः। मुक्तेर्हि परापररूपतया द्वैविध्यम्। यदुक्तं—विद्याविद्येशत्वं त्वपरा मुक्तिः परेह शिव-सम्मतेति 'चन्द्रमौलये प्रकाशाह्लादरूपाय॥

(घ) विश्वाप्यायनकृदमाख्यामृतकलारूपाय चन्द्रमौलये ॥९॥

भोग और विद्याविद्येश्वरत्व-प्राप्तिरूप मोक्ष की प्राप्ति के लिए संयोग बनाने-वाले, सायुज्यप्राप्तिरूप परमनिर्वाण के दाता एवं विश्व को सिक्त करनेवाली 'अमा'-नामकअमृतकलारूप चन्द्र को सिर पर धारण करनेवाले चन्द्रमौलि भगवान् स्वच्छन्दनाथ के लिये नमस्कार हो ॥९॥

घोष्याय सर्वमन्त्राणां सर्ववाङ्मयमूर्त्तये।
नमः शर्वाय सर्वाय सर्वपापापहारिणे[1] ॥१०॥

(क) गतार्थमेतत्।

(ख) सर्वैरपि मननत्राणस्वभावैर्मन्त्रैः परमेश्वर एव प्रकाशात्मको वस्तुतो घोष्यः—सम्बोध्यस्त-द्रूपत्वान्निखिलस्योपास्यदेवतावर्गस्येति स एव परविमर्शरूपत्वाद्विश्वात्मकाखिलविमर्श-बीजभूतत्वाच्च सर्ववाङ्मयमूर्तिः। विमर्श एव हि वस्तुतो वाक्तत्त्वम्।

(घ) शर्वायेति— भेदमयमायीयस्वरूपकरणात् सृष्टिस्थितिप्रलयसंहारमात्रतापादनेन शरण-वरणरूपः तस्मै ॥१०॥

मनन एवं त्राण-स्वभावात्मक समस्त मन्त्रों द्वारा सम्बोध्य, परविमर्शरूप विश्वात्मक अखिलविमर्श के बीजभूत—'विमर्शात्मक वाक्तत्त्वरूप' सर्ववाङ्मय-मूर्ति, सर्वपापनिवारक, सृष्टि, स्थिति एवं संहार-कर्ता तथा सभी के शरणभूत भेदमय मायीयस्वरूप (श्रीस्वच्छन्दनाथ) के लिये नमस्कार हो ॥१०॥

रवणाय रवान्ताय नमस्तेऽरावराविणे।
नित्याय सुप्रबुद्धाय सर्वान्तरतमाय ते ॥११॥

(क) रवणाय नादस्वरूपाय रवस्य नादस्यान्तस्तस्मै, अविद्यमानोऽनुच्चार्यः स्थानकरणप्रयत्नै-रनभिगम्यो—रावो यस्य सोऽरावः, रौति तच्छीलो रावी अरावश्चासौ रावी (च) तस्मै अनाहतनादरूपाय।

(ख) मायीयया वाचानुच्चार्यस्यापि परमेश्वरस्य सकलविमर्शोल्लासबीजभूतत्वेन रावित्व-मिति।

(ग) अरावराविणे-अनाहतनादरूपाय।

---

१. 'सर्वपाशापहारिणे'—इत्यपि पाठः।

(घ) श्रीस्वच्छन्दतन्त्रे :—

नादं वै व्यापकं ध्यायेदहोरात्रायनेषु च।
नाड्याधारस्तु नादो वै भित्त्वा सर्वमिदं जगत्॥
अधःशक्त्या विनिर्गत्य यावद् ब्रह्माणमूर्ध्वतः।
नाड्या ब्रह्मबिले लीनस्त्वव्यक्तध्वनिरक्षरः।
नदते सर्वभूतेषु शिवशक्त्या त्वधिष्ठितः॥ इति ॥११॥

नाद, नादान्त, अनाहत, नित्य, सुप्रवुद्ध एवं सर्वान्तरतम—सर्वान्तर्यामी के लिये नमस्कार हो ॥११॥

घोष्याय परनादान्तश्चराय खचराय ते।
नमो वाक्पतये तुभ्यं भवाय भवभेदिने ॥१२॥

(क) घोषणीयो घोष्यः पठितव्यः परस्य नादस्यान्तश्चरोऽधिष्ठाता खे भावशून्ये चरति तदाविष्टो भवति अत एव वाचाम्पतिः ॥१२॥

घोषणीय, परनाद के अधिष्ठाता, भावशून्य में विचरण करनेवाले, वाणी के स्वामी, संसाररूप शिव तथा संसार के वन्धन से छुड़ानेवाले प्रभु, बहुरूप के लिये नमस्कार हो ॥१२॥

रमणाय रतीशाङ्गदाहिने चित्रकर्मणे।
नमः शैलसुताभर्त्रे विश्वकर्त्रे महात्मने ॥१३॥

(क) रमयति ह्लादयति इति रमणः।

(ख) रतीशः कामदेवः — तदङ्गस्य तच्छरीरस्य दाहिने। चित्राणि अनन्तप्रकार-वैचित्र्ययुक्तानि सृष्ट्यादि-कृत्य-पञ्चकमयानि कर्माणि यस्य, तस्मै नमः।

(घ) भेदोल्लासहेतुः स्वातन्त्र्यशक्तिर्माया यस्यास्ति स चिद्रूपत्वाद् विशुद्धः। मायावी व्याजी च कथं विशुद्ध इति विरोधाभासः। एवमन्यत्र सर्वस्यागोचरः प्रकाशघनस्वात्मरूपः ध्यानादिनिष्ठैरप्यलक्ष्यः स्वातन्त्र्याद् गृहीतविश्वाकारः, अत एव चित्रं विचित्रमाश्चर्यरूपञ्च कर्म यस्य, तस्मै चित्रकर्मणे।

समस्त चराचर में रमण करनेवाले, कामदेव को भस्म करनेवाले, अनन्त प्रकार की विचित्रता से युक्त सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रहरूप कर्मवाले, पार्वती के पति, विश्व के कर्ता एवं महात्मा (श्रीस्वच्छन्दनाथ) के लिये नमस्कार हो ॥१३॥

नमः पारप्रतिष्ठाय सर्वान्तपदगाय ते।
नमः समस्ततत्त्वाध्व-व्यापिने चित्स्वरूपिणे ॥१४॥

(क) तमसो यः पारः पर्यन्तो निष्कासनं प्रकाशस्तत्र प्रतिष्ठा यस्य स्वप्रकाशरूपाय । यदुक्तम्—

महतस्तमसः पारे पुरुषं ज्वलनप्रभम् ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्घोरात् संसारबन्धनात् ॥ इति

सर्वेषामन्तः सर्वान्तः सर्वान्तं च तत्पदं तत्र गच्छतीति तस्मै सर्वोपाधिवर्जिताय ।

(ख) समस्तानि षट्त्रिंशत्तत्त्वानि समस्तांश्च पद-मन्त्र-वर्ण-भुवनतत्त्वकलात्मकान् षडध्वनो व्याप्नोतीति तच्छीलस्तस्मै चित्स्वरूपाय नमः ।

(ग) सर्वान्तपदगाय उपाधिरहिताय ।

(घ) चित्स्वरूपिणे पूर्णाऽहन्तापरामर्शमयत्वाच्चित्स्वरूपस्तस्मै नमः । आणवं मायीयं च मलं देहाद्यभिमानरूपमज्ञानम् ॥१४॥

स्वप्रकाशरूप, सर्वोपाधि रहित, छत्तीस तत्त्व; पद, मन्त्र, वर्ण, भुवन, तत्त्व और कलात्मक छह अध्वों में प्राप्त तथा चित्स्वरूप के लिये नमस्कार हो ॥१४॥

रेवद्वराय रुद्राय नमस्तेऽरूपरूपिणे ।
परापरपरिस्पन्द-मन्दिराय नमो नमः ॥१५॥

(क) रे (यौं) विद्येते येषां ते रेवन्तः, रेवतां मध्ये वरः उत्कृष्टः, रोदयति मोहयतीति रुद्रः, अरूपरूपिणे रूपातीताय, चिन्मयाय, परापरो यः परिस्पन्दः उल्लासः परः शान्तः शिवस्वभावोऽपर उदितशक्तिस्वभावस्तयोरुल्लासस्य मन्दिरं विश्रान्तिस्थानं तस्मै ।

(ग) परापरपरिस्पन्दमन्दिराय षट्त्रिंशत्तत्त्वानि षडध्वानः पद-वर्ण-मन्त्र-भुवन-तत्त्व-कलात्मकाः, षडध्वनां व्यापकाय चित्स्वरूपत्वात् ।

(घ) अरूपरूपिणे — संसाररूपतया भाति, न पुनश्चिद्रूपशिव-व्यतिरिक्तं संसारस्य निजरूपं किञ्चिद्, एवमपि संसारान्निष्क्रान्तं, निःसंसारं तेनासंस्पृष्टरूपमिति विरोधाभासः ।
रुद्राय— परचैतन्यस्फारात्तु प्रवेशात्मनो रोधनस्य अशेषपाशाद्रावणस्य हेतोः ॥१५॥

रे अथवा र्-य् वर्णबीजवालों में उत्कृष्ट, रुद्र, रूपातीत, चिन्मय, शान्त एवं उदित शक्ति-स्वभाव के विश्रान्ति स्थान के लिये नमस्कार हो ॥१५॥

भरिताखिलविश्वाय योगगम्याय ते नमः ।
नमः सर्वेश्वरेशाय महाहंसाय शम्भवे ॥१६॥

(क) भरितं स्वैश्वर्यशक्त्याऽखिलं विश्वं चराचररूपं तन्मयत्वादित्यर्थः । तस्मै महाहंसाय — "शिवो धर्मेण हंसः" इत्युक्तनीत्या परमात्मस्वरूपाय चिद्रूपत्वात् ।

(ख) योगगम्याय—योगेन चित्तवृत्तिनिरोधेन गम्यः तस्मै ॥१६॥

अपनी ऐश्वर्य शक्ति से अखिल विश्व का भरण-पोषण करनेवाले चराचर-रूप, चित्तवृत्ति निरोधरूप योग के द्वारा ज्ञेय एवं प्राप्त, सर्वेश्वर एवं महाहंस-चिद्रूप भगवान् शिव के लिये नमस्कार हो ॥१६॥

चर्च्याय चर्चनीयाय चर्चकाय चराय ते।
रवीन्दु-सन्धिसंस्थाय महाचक्रेश ते नमः ॥१७॥

(क) चर्च्ययेति— मन्त्राक्षरहानिहेतुत्वादपपाठः। "शर्वायेति पाठः" एष सङ्गतः। चर्चितुमुपपद्यसे त्वमेव चर्च्यः, चर्चकाय=चेतकस्वभावाय, चराय=स्पन्दात्मने, रवीन्द्वोः—प्राणापानयो, यः सन्धिस्तत्र सम्यक् स्थानं यस्य तस्मै प्राणापानोभयपथगामिने।

(ख) कथमपपाठ इति न स्पष्टीकृतं टीकाकृता।

(घ) भगवद्भक्तेरेव चर्वणपरामर्शानन्तरमेव जीवन्मुक्त्याख्यः अनन्तरः अव्यवहितो रसश्चर्वणानन्दः ॥१७॥

स्मरणीय चर्चा-परामर्श के योग्य, चेतन-स्वभाव, स्पन्दात्मा तथा प्राणापान की सन्धि में स्थित अथवा प्राणापानरूप उभय मार्गगामी हे महाचक्रेश ! आपके लिये नमस्कार हो ॥१७॥

सर्वानुस्यूत-रूपाय सर्वाच्छादकशक्तये।
सर्वभक्ष्याय सर्वाय नमस्ते सर्ववेदिने ॥१८॥

(क) सर्वत्रानुस्यूतं रूपमोतत्वादन्तश्चारि यस्य, सर्वत्राच्छादिका स्रोतोरूपा शक्तिर्यस्य तस्मै सर्वाय सर्वरूपाय सर्वभक्ष्याय यो यो भावो भाव इतिवत् सर्वभक्ष्यत्वम्।

(ख) सर्वायेत्यार्षः पाठः, शर्वायेति वा पाठः, सर्वं वस्त्ववस्तु भूतं विश्वं प्रकाशान्तर्मुद्रितमेव प्रकाशितुमलम्। अतोऽपरिच्छिन्नप्रकाशरूपस्य परमेश्वरस्य सर्वेषां प्रमेयावर्गाणामात्मसात्करणरूपा मुक्तिः सिद्धा ॥१८॥

सभी में सर्वत्र अन्तर्व्याप्त रूपवाले, सर्वत्र आच्छादिका-स्रोतोरूप शक्ति से सम्पन्न, सभी का अपने में संहरण करनेवाले, सर्वज्ञ तथा सर्वरूप के लिये नमस्कार हो ॥१८॥

रम्याय वल्लभाक्रान्त-देहार्धाय विनोदिने।
नमः प्रपन्नदुष्प्राप्यसौभाग्यफलदायिने ॥१९॥

(क) गतार्थमेतत्।

(ख) वल्लभाक्रान्तेति—अर्धनारीश्वररूपाय, प्रपन्नेभ्यः शरणागतेभ्यो दुष्प्राप्यस्य सौभाग्यफलस्य विचित्रभोगमोक्षात्मकस्य दायिने ॥१९॥

रमणीय, अर्धनारीश्वर, विनोदी तथा शरणागत भक्तों को कठिनाई से प्राप्त होने वाले भोग-मोक्षात्मक सौभाग्य के दाता भगवान् स्वच्छन्दनाथ के लिये नमस्कार हो ॥१९॥

तन्महेशाय तत्त्वार्थ-वेदिने भवभेदिने।
महाभैरवनाथाय भक्तिगम्याय ते नमः ॥२०॥

(क) गतार्थमेतत् ।

(ख) तत्त्वार्थं वास्तविकमर्थं वेत्तीति तच्छीलस्तस्मै, भवस्य संसारस्य संसरणस्य भेदिने विनाशकाय, भैरवास्तावदभेददृष्टिभाजः सिद्धाः, महाभैरवाणां नाथः स्वयं परमेश्वर एव। भक्त्योपायभूतया गम्यः साक्षात्कार्योऽसौ ।

(घ) विद्यारूपस्याविद्यारूपस्य चोभयस्यापि तत्त्वं विन्दति तस्मै तत्त्वार्थवेदिने, समावेशरसानुविद्धव्यापारया भक्त्या गम्यस्तस्मै भक्तिगम्याय ॥२०॥

विद्या और अविद्यारूप उभयविध तत्त्व के वास्तविक अर्थ के वेत्ता, बार-बार के जन्म-मरणरूप वन्धन को नष्ट करनेवाले, समावेशरसानुविद्ध व्यापारशालिनी भक्ति से ज्ञेय तथा महेश्वर उन महाभैरवनाथ के लिये नमस्कार हो ॥२०॥

शक्ति-गर्भप्रबोधाय शरण्यायाशरीरिणे ।
शान्ति-पुष्टयादि-साध्यार्थ-साधकाय नमोऽस्तु ते ॥२१॥

(क) शक्तिर्विमर्शो गर्भः सारो यस्य, अत एव प्रकृष्टो बोधः प्रकाशः अत एवाशरीरः। शरणे साधुः शरण्यः शरण्यत्वं व्यक्तीकरोति, शान्तीत्यादिना शान्तिपुष्टयादयः साधनीया अर्था व्यापारास्तेषां साधकाय ।

(ख) शक्तिर्गर्भश्चासौ प्रबोधश्चेति तस्मै विमर्शनिर्भरशुद्धप्रकाशरूपाय ।

(घ) अशरीराय-शुद्धचिदेकरूपाय ॥२१॥

प्रकाश-विमर्शरूप, अशरीरी, शुद्धचिदेकरूप, शरणागतरक्षक तथा शान्ति-पुष्टि आदि कर्मों के साधक के लिये नमस्कार हो ॥२१॥

रक्तकुण्डलिनी-गर्भ-प्रबोधप्राप्तशक्तये ।
उत्स्फोटनापटुप्रौढपरमाक्षरमूर्तये ॥२२॥

(क) रवणा कुण्डलिनी तस्या गर्भस्तत्र प्रबोधस्तेन प्राप्ता शक्तिः सामर्थ्यं यस्य, उत्स्फोटनायां विश्वस्फारविषये पटु कृत्वा प्रौढा परमाक्षरमयी मूर्तिर्यस्य तस्मै उद्रिक्तरूपाय ॥२२॥

उन्निद्र कुण्डलिनी के अन्तःप्रबोध से सामर्थ्यशाली तथा विश्व-विस्तार में पटु एवं प्रौढ, परमाक्षररूप के लिये नमस्कार हो ॥२२॥

समस्तव्यस्तसङ्ग्रस्त-रश्मिजालोदरात्मने ।
नमस्तुभ्यं महामीनरूपिणे विश्वगर्भिणे ॥२३॥

(क) समस्तश्च व्यस्तश्च सम्यक् ग्रस्तमात्मसात्कृतं यद्रश्मिजालं शक्तिसमूहस्तस्योदरं तदात्मा यस्य विश्वं जलायमानं गर्भेऽन्तर्यस्य न तु जलस्यान्तर्वर्ति, मीनरूपिणे शक्तिरूपाय ।

(ख) महामीनत्वं शक्तेः कथमिति न प्रतिपादितम् । महामीनरूपेण नारायणेन प्राक् समुद्धृतं विश्वमिति हि प्रसिद्धम्, तेनोपमाव्यङ्ग्या स्यात् ।

(ग) महामीनरूपाय— यथा जडस्य जलस्य चेतनो मीनोऽन्तश्चारी भवति, तेन जडमपि जलं चेतनमिवाऽऽभासते तथा भगवतोऽपि जडस्य जगतोऽन्तश्चारित्वाज्जडमपि जगच्चेतनं प्रतिभाति ॥२३॥

समस्त और व्यस्तरूप रश्मिजालमय शक्तिसमूह को आत्मसात् करनेवाले तथा जलरूप विश्व को अपने अन्तर में धारण करनेवाले महामीनरूपी हे परमात्मा, आपके लिए नमस्कार हो ॥२३॥

(**विशेष**—जैसे जड़ जल में चेतन मत्स्य विचरण करता है, तो उससे वह जड़ जल भी चेतन प्रतीत होता है, उसी प्रकार चेतन परमात्मा के जड़ जगत् में व्याप्त होने के कारण जगत् भी चेतन प्रतीत होता है।)

रेवारणिसमुद्भूत-वह्निज्वालावभासिने ।
घनीभूतविकल्पात्मविश्वबन्धविलापिने ॥२४॥

(क) रेवृ, प्लवगतौ-रेवति-गच्छति सर्वत्र प्रसरति इति रेवा शक्तिः सैवारणिस्तस्याः सारभूताया वह्निज्वालास्ताभिरवभासते तच्छीलस्तस्मै। घनीभूतविकल्पात्मा यो विश्वबन्धस्तस्य विलापकाय।

(ख) रेवारणीति— स्वशक्त्युत्थज्वालाभिर्भासमानाय। घनीभूतेति— घनीभूतसङ्कल्पात्मकजगद्बन्धनाशिने ॥२४॥

भोगिनीस्यन्दनारूढि-प्रौढिमालब्ध-गर्विणे ।
नमस्ते सर्वभक्ष्याय परमामृत-लाभिने ॥२५॥

(क) भोगिनी कुण्डलिनी। पवनाधःस्था कुण्डलिनी शक्तिः सैव स्यन्दनं रथस्तस्यामधिरूढिस्ततः प्रौढिमा सर्वाकारमुन्मुखता तेन लब्धो गर्वोऽभिमानं येन, परामृतं मूर्धस्थानस्थचन्द्रस्तं लाभयति गमयति यः स तथा तस्मै।

(ख) प्रकाश एव सर्वमन्तर्भूतमिति प्रकाशरूपस्य शिवस्य सर्वत्रोतप्रोतत्वेन सर्वभक्ष्यत्वम्, सर्वस्यापि आत्मसात्कारित्वम् ॥२५॥

रेवा-शक्तिरूप अरणि से उद्भूत वह्निज्वालाओं से भासित, घनीभूत, विकल्परूप विश्वबन्धन को नष्ट करनेवाले, कुण्डलिनीशक्ति के रथ पर आरूढ होने से प्राप्त प्रौढता से पूर्ण, शिरः-स्थित चन्द्रमा से विभूषित तथा सभी को आत्मसात् करनेवाले भगवान् बहुरूप के लिए नमस्कार हो ॥२४-२५॥

नफ-कोटिसमावेश-भरिताखिलसृष्टये ।
नमः शक्तिशरीराय कोटिद्वितयसङ्गिने ॥२६॥

(क) नफकोटीति मालिनी तदावेशवशेनैव हि परमेश्वरो निखिलशक्तिमयं विश्वं सृजति, अत एवोक्तम्। शक्तिशरीरायेति—अत एव शक्तिमल्लक्षणेन कोटिद्वितयेन युक्तः।

(ख) नादि-फान्त-वर्णरूपा हि मालिनी ॥२६॥

न—आदि से फ—अन्त (अर्थात् न-प-फ) वर्णरूप मालिनी के आवेश से पूर्ण होकर सकल सृष्टि की रचना करनेवाले, शक्ति-युक्त हे अर्धनारीश्वरमय शरीर-धारी आपके लिए नमस्कार हो ॥२६॥

महामोहमलाक्रान्तजीववर्गविबोधिने ।
महेश्वराय जगतां नमोऽकारणबन्धवे[1] ॥२७॥

(क) गतार्थमेतत् ।

(ख) महामोहात्मकेन मलेनाक्रान्ता ये जीववर्गास्तेषां विबोधिने मोहाद् विबोधयतीति तच्छील-स्तस्मै, "प्रवोधिने" इत्यपि पाठः। जगतामकारणबन्धुः परमेश्वर एव निरपेक्षत्वात्तस्य। "नमः कारणबन्धवे। इति पाठे जगतां यानि कारणानि ब्रह्मादि-सदाशिवान्तानि पञ्च-ताश्रितसहितानि वा षट् तेषां बन्धवे परमुपकर्त्रे तेभ्यस्तत्तदैश्वर्यप्रदात्रे ॥२७॥

महामोहात्मकमल से व्याप्त जीववर्ग को ज्ञानदान के द्वारा प्रबुद्ध बनानेवाले तथा प्राणिमात्र के अकारण-बन्धु अथवा जगत् के कारणरूप, ब्रह्मादि-शिवान्त सभी को विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करके उनका परम उपकार करनेवाले महेश्वर—शिव के लिए नमस्कार हो ॥२७॥

स्तेनोन्मूलनदक्षैक-स्मृतये विश्वमूर्तये ।
नमस्तेऽस्तु महादेवनाम्ने पर-स्वधात्मने ॥२८॥

(क) स्तेनानां मोहकानां प्रत्यवायानां चौराणां यदुन्मूलनं तत्र दक्षैका स्मृतिर्यस्य तस्मै परामृत-रूपाय शिवाय चन्द्रमसे।

(ग) विश्वमूर्तये—स्वातन्त्र्याद् गृहीतविश्वाकाराय, महादेवनाम्ने, देवः सृष्ट्यादिक्रीडापरः विश्वोत्कर्षशालितया विजिगीषुः अशेषव्यवहारप्रवर्तकः द्योतमानः सर्वस्य स्तोतव्यो गन्त-व्यश्च। दीव्यतेः क्रीडाद्यर्थत्वात्, स च महान् ब्रह्मादीनामपि, सर्गादिहेतुत्वात् विश्वस्य च। अत एव महादेवनामा — चिदानन्दघनत्वात् परस्वधात्मने ॥२८॥

केवल स्मरण से ही विघ्नरूप चोरों का उन्मूलन करनेवाले, परामृतरूप एवं विश्वमूर्ति भगवान् महादेव के लिए नमस्कार है ॥२८॥

रुग्द्राविणे महावीर्यरुरुवंश-विनाशिने ।
रुद्राय द्रावितशेषबन्धनाय नमो नमः ॥२९॥

(क) रुजां मलानां द्राविणे, रुरवो विकल्पास्तेषां वंशः उत्पत्तिस्थानं मनः। अत एव विद्रावितान्य-शेषाणि बन्धनानि येनेति। रुद्रनाम निरुक्तम्।

---

1. नमः कारणबन्धवे—इत्यपि पाठः।

(घ) चित्पदे रोदनाद् द्रावणाच्च रुद्रः ॥२९॥

रोगों अथवा मलों के निवारक, महान् पराक्रमी, विकल्पों के वंश के विनाशक तथा अशेष बन्धनों को नष्ट करनेवाले भगवान् रुद्र के लिये बार-बार नमस्कार हो ॥२९॥

द्रवत्परररसास्वाद-चर्वणोद्यतशक्तये ।
नमस्त्रिदशपूज्याय सर्वकारणहेतवे ॥३०॥

(क) द्रवत्याऽसौ परमरसो मूर्धन्यं परामृतं तस्यास्वादश्चर्वणं तत्र नित्योद्यता शक्तिर्यस्य; त्रिदश-पूज्याय त्रिदशा अमरा इति स्पष्टोऽर्थः, त्रिभिरुपलक्षिता दश त्रिदश, त्रिदशत्वेन पूज्यः । श्रीमहद्दर्शने :—"द्वादशोत्तीर्णदेवीधामरूपत्रयोदशमपररूपत्वेन पूज्यः" इत्यर्थः । यदि वा त्रयोदश शब्दादयः । अयमर्थः :—

भूजलाम्बरचराः सखेचरा यो नवामृतचरुः स पञ्चमः ।
ते च पञ्च मिलितास्त्रयोदश, प्राशिताः खचरयोगिनीगणै"रिति—उक्त्या

त्रयोदशभिश्चरुभिः पूज्यते भगवान् इति शब्दादीनामेव रहस्यद्रव्यैः प्रतिनिधित्वमाम-नन्त्याम्नायज्ञाः सर्वेषां कारणानां ब्रह्मादीनां कुलगतानां पञ्च-पञ्चानां हेतुः ॥३०॥

द्रवित होते हुए परमरस-परामृत के आस्वादन में सदा तत्पर ऐसी शक्ति-वाले, त्रि-दश-विध चरुरूप रहस्यद्रव्यों से पूज्य अथवा देवताओं से पूज्य तथा समस्त कारणों के भी कारणभूत उस परमात्मा के लिये नमस्कार हो ॥३०॥

रूपातीत नमस्तुभ्यं नमस्ते बहुरूपिणे ।
त्र्यम्बकाय त्रिधामान्तश्चारिणे चित्रचक्षुषे[1] ॥३१॥

(क) तिस्रोऽम्बिका ज्ञानादयः शक्तयो यस्य, यदुक्तम्—

"तिस्रो देव्यो यदा चैनं नित्यमेवाभ्युपासते । त्र्यम्बकस्तु ततो ज्ञेय" इति ।

"सूर्याचन्द्रमसौ वह्निस्त्रिधाम-परिकल्पिता"

इति नीत्या त्रयाणां रविशशिशिखिनां जगत्प्रकाशकानामन्तश्चारिणेऽधिष्ठात्रे—

"त्रिनेत्रकल्पना मह्यं तदर्थमिह चोद्यत"

इति नीत्या चित्राणि धामत्रयधारित्वादाश्चर्यरूपाणि त्रीणि च चक्षूंषि यस्य तस्मै ।

(ख) बहुरूपिणे—परमेश्वरः स्वच्छन्दो निष्कलोऽनाहतध्वनिपरमार्थमहामन्त्रवीर्यरूपोऽपि शिरो-रूपाकारकलया षष्ठ्येन सकारेण च घोरतरशक्तिचक्ररूपेण ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ब्रह्मप्रकृति-मायाण्डानि जागरस्वप्नसुषुप्तानि प्रमेयप्रमाणप्रमातृंश्चेति सृष्टिस्थितिसंहारविलयमात्रं

---

१. "चारिणे च त्रिचक्षुषे" इत्यपि पाठः ।

भेदमयं जगद् दर्शयति । व्याख्यास्यमानसतत्त्वतया बिन्द्वादिप्रमेयपरिपाटया च घोर-रूपतया भेदाभेदमयेश्वर-सदाशिवानाश्रितादीन् विद्याशक्ति-अण्डद्वयवर्तिनस्तुर्यपदा-वस्थितान् क्रमात्क्रमं सातिशयात् सर्गस्थितिसंहारशक्त्याक्रान्तानाऽभासयति, उन्मना-शक्त्या तु घोररूपशक्तिचक्रपरमार्थतयाऽशेषतुर्यातीतपदारोहितया स्वात्ममयीकुर्वन् मोचयति-इति भगवतो बहुरूपस्य पदार्थद्वारेणेयान् स्फारो व्याख्यातः ॥३१॥

हे रूपातीत ! आपके लिये नमस्कार हो । ज्ञानादि तीन अम्बिकाशक्तियों से उपास्य, सूर्य, चन्द्र और अग्निरूप धामत्रय के अधिष्ठाता एवं आश्चर्यरूप नेत्रोंवाले भगवान् बहुरूप के लिये नमस्कार हो ।३१॥

पेशलोपायलभ्याय भक्तिभाजां महात्मनाम् ।
दुर्लभाय मलाक्रान्तचेतसां तु नमो नमः ॥३२॥

(क) गतार्थमेतत् ।

(ख) भक्तिभाजां महापुरुषाणां कृते परमेश्वरः प्राणायामादिकष्टराहित्येनैव पेशलैरुपायैः सरलैः सुखमयैः शाम्भवशक्त्यादिभिरुपायैर्लभ्यः साक्षात्कार्यः आणवमायीयात्मकघोरमला-क्रान्तचेतसां पुनर्दुर्लभः ॥३२॥

भक्तियुक्त महापुरुषों के लिये प्राणायामादि कष्टसाध्य उपायों के बिना ही, सरल शाम्भवशक्त्यादि उपायों से साक्षात्करणीय तथा आणव-मायीय स्वरूप घोर मलों से आक्रान्त चित्तवाले मनुष्यों के लिये दुर्लभ उस परमात्मा के लिये बार-बार नमस्कार हो ॥३२॥

भव-प्रदाय दुष्टानां भवाय भवभेदिने ।
भव्यानां त्वन्मयानां[1] तु सर्वदाय नमो नमः ॥३३॥

(क) भवति सर्वमस्मादिति भवः । भवञ्च भिनत्ति इति, सृष्टि-संहारकर्ता । भवं भूतिं भवन-मर्हन्तीति भव्याः । आरुरुक्षवस्त्वन्मया आरूढा विश्रान्तिजुषः । दुष्टानां भवं संसारं ददाति । भव्यानां कुशलमार्गप्रतिपन्नत्वेनारुरुक्षूणां भवं भिनत्ति, तदेवंरूपाणां च सर्वज्ञत्व-सर्वकर्तृत्वलक्षणपारमैश्वर्याभिव्यक्त्या सर्वप्रदस्तस्मै । भवत्यस्मात्सर्वमिति कृत्वा भवाय नमः ॥३३॥

दुष्टों को सांसारिक बन्धनों से कष्ट भोगने के लिये जन्म देने वाले, भव्य-जनों को बन्धन-मुक्त कराने के लिए जन्म-मरण से मुक्त करनेवाले तथा भगवद्-भक्ति परायण, उत्तममार्गानुगामी, मुमुक्षुओं को सर्वज्ञत्व एवं सर्वकर्तृत्वरूप पारमैश्वर्य की अभिव्यक्ति से सर्वस्व प्रदान करनेवाले भगवान् बहुरूप के लिये बार-बार नमस्कार हो ॥३३॥

---

१. 'तन्मयानाम्'—इत्यपि पाठः

अणूनां मुक्तये घोर-घोर-संसारदायिने।
घोरातिघोरमूढानां तिरस्कर्त्रे नमो नमः ॥३४॥

(क) अणूनां बद्धात्मनां मुक्तिहेतुमलपरिपाकाद्यर्थमतिघोरसंसारप्रदाय। यद्वा मुक्त्यर्थं संसार-खण्डयित्रे, घोरातिघोरमूढानां राजसातिराजसतामसानां, तिरस्कर्त्रे तिरोधायकाय। एतेन पूर्वं शान्तास्तथात्वे च सत्त्वोद्रेकान्मुक्त्यर्हा इति प्रतिपादितम्। इति शम्।

"इति बहुरूपगर्भस्तोत्रे श्रीमदनन्तशक्तेः कृतिः विषमपदसङ्केतः सम्पूर्णः।"

(ख) दो अवखण्डने, इत्यस्माद् धातोर्दायिने इति शब्दः।
इति श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रे श्रीमद्बलजिन्नाथपण्डितविरचिता टिप्पणी सम्पूर्णा।

(ग) इति श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रस्य श्रीगोविन्दभट्टकृतौ टिप्पणी सम्पूर्णा।

(घ) आणवं मायीयं देहाद्यभिमानरूपमज्ञानं तेषामणूनां घोराणाम् परचित्प्रथाभित्त्या भासिताहन्तेदन्ताभासकात्मकस्व-शक्तिदर्पणोट्टङ्कितमायादिक्षित्यन्तभेदप्रथाप्रदानाम्। उक्तञ्च 'श्रीमालिनीविजये' :—

विषयेष्वेव संलीनानधोधः पातयन्त्यणून्।
रुद्राणून् याः समालिङ्ग्य घोरतर्योऽपराः स्मृताः ॥
मिश्रकर्म-फलासक्ति पूर्ववज्जनयन्ति याः।
मुक्तिमार्गतिरोधिन्यस्ताः स्युः घोराः परापराः ॥

"श्रीपञ्चार्थप्रमाणे" तु :—

प्रोक्ता गोपतिपूर्वा ये रुद्रास्तु गहनान्तगाः।
ते तु घोराः समाख्याता नानाभुवनवासिनः ॥
विश्वेश्वराद्यनन्तान्ता महामाहेश्वराश्च ये।
घोरघोरतरास्त्वन्ये विज्ञेयास्त्वद्य आश्रिताः ॥
मलं कर्म च मायीयमाणवमखिलं च यत्।
सर्वं हेयमिति प्रोक्तमिति··· ॥

इति श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रे श्रीमत्-शम्भुनाथ-राजानविरचिता
टिप्पणी सम्पूर्णा।

बद्ध आत्माओं की मुक्ति के लिये अत्यन्त घोर संसार को देनेवाले अथवा मुक्ति हेतु संसार का खण्डन करनेवाले तथा घोर, अतिघोर एवं मूढ अथवा राजस, अतिराजस तथा तामसभाव के विनाशक परमात्मा के लिए बार-बार नमस्कार हो। ३४॥

उपसंहारः

सर्वकारण-कलापकल्पितोल्लास-सङ्कुलसमाधिविष्टराम् ।
हार्दकोकनदसंस्थितामपि, तां प्रणौमि शिववल्लभामजाम् ॥

(क) हार्दकोकनदे साधकानां हृदयकमले संस्थितामपि सर्वेषां ब्रह्मादीनां कारणानां यः कलापः समूहः तेन कल्पितः प्रादुर्भावितो य उल्लासः स्वात्मचमत्कारानन्दस्तेन सङ्कुलो भरितो यस्तेषां समाधिः परः शिवसमावेशः, स एव विष्टरः आसनं विश्रान्तिधाम यस्यास्ता-मजामुत्पत्तिरहितां नित्याम् अ-इति अनुत्तरतो जायमानां वाऽऽनन्दाख्यामिच्छाख्यां वा त्वां स्वसंवेदनसाक्षात्कार्यां शिववल्लभां शक्तिसुन्दरीं प्रणमामि।

साधकों के हृदयकमल में स्थित होते हुए भी ब्रह्मादि सर्व कारण समूह से प्रकटित उल्लासजन्य स्वात्म-चमत्काररूप आनन्द से परिपूर्ण समाधिवाले शिव का आसन ही जिसका विश्रामस्थान है, उस उत्पत्तिरहित-अजा, आनन्दरूपा, शिविवल्लभा, शक्तिसुन्दरी को मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्वजन्तुहृदयाब्जमण्डलोद्भूतभावमधुपान-लम्पटाम् ।
वर्णभेदविभवान्तरस्थितां, तां प्रणौमि शिववल्लभामजाम् ॥

सर्वे ब्रह्मादयः स्थावरान्ता जन्तवः प्राणिनस्तेषां हृदयकमलमण्डलेषु सततं स्पन्द-निर्भरे समुद्भूता ये विविधविचित्र-विकल्पात्मका भावास्तद्रूपं यन्मधु मद्यं तस्य पाने लम्पटां विविध-विकल्पकल्पनास्वादनव्यसनिनीम् ।
यथोक्तं स्पन्दशास्त्रे :—

शब्दराशि-समुत्थस्य, शक्तिवर्गस्य भोग्यताम् ।
कला-विलुप्तविभवो, गतः सन् स पशुः स्मृतः ॥ इति ।

अकारादि-हकारान्तानां वर्णानां यो भेदः स एव विभव ऐश्वर्यं विसर्गानन्दात्मकं तदन्तरवस्थितामोतप्रोतत्वेन व्यापिनीं, त्वां मातृकारूपिणीं शक्तिसुन्दरीं प्रणमामीति ।

समस्त ब्रह्मादि-स्थावरान्त जन्तु जिसके हृदय-कमल मण्डलों में निरन्तर स्पन्दन होने से उत्पन्न विविध, विचित्र विकल्पात्मक भावरूप मधु—मद्य के पान में तत्पर तथा अकारादि हकारान्त वर्णों के भेदरूप ऐश्वर्य में व्याप्त रहनेवाली मातृकारूपिणि उस शिववल्लभा भगवती अजा को मैं प्रणाम करता हूँ।

[फलश्रुतः]

इत्येवं स्तोत्रराजेशं, महाभैरवभाषितम् ।
योगिनीनां परं सारं, न दद्याद्यस्य कस्यचित् ॥
अवीक्षिते शठे क्रूरे, निःसत्ये शुचिवर्जिते ।
नास्तिके च खले मूर्खे, प्रमत्ते विप्लुतोजसे ॥

गुरुशास्त्रसदाचारदूषके कलहप्रिये ।
निन्दके जम्भके क्षुद्रे, समयघ्ने च दाम्भिके ॥
दाक्षिण्यरहिते पापे, धर्म्महीने च गर्विते ।
भक्तियुक्ते प्रदातव्यं, न देयं परदीक्षिते ॥
पशूनां सन्निधौ देवि ! नोच्चार्यं सर्वथा क्वचित् ।
अस्यैव स्मृतमात्रस्य, विघ्ना नश्यन्ति सर्वशः ॥
गुह्यका यातुधानाश्च, वेताला राक्षसादयः ।
डाकिन्यश्च पिशाचाश्च, क्रूरसत्त्वाश्च पूतनाः ॥
नश्यन्ति सर्वे पठितस्तोत्रस्यास्य प्रभावतः ।
खेचरी भूचरी चैव, डाकिनी शाकिनी तथा ॥
ये चान्ये बहुधा भूता दुष्टसत्त्वा भयानकाः ।
व्याधि-दुर्भिक्ष-दौर्भाग्य-मारी-मोह-विषादयः ॥
गजव्याघ्रादयो दुष्टाः, पलायन्ते दिशो दश ।
सर्वे दुष्टाः प्रणश्यन्ति, चेत्याज्ञा पारमेश्वरी ॥

इति श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

इति शुभम्

उपसंहार एवं फलश्रुति

इस प्रकार यह महान् स्तोत्रराज महाभैरव द्वारा कहा गया है। यह योगिनियों का परम सारभूत है। यह स्तोत्र जिस-किसी अयोग्य तथा अदीक्षित, मायावी, क्रूर, मिथ्याभाषी, अपवित्र, नास्तिक, दुष्ट, मूर्ख, प्रमादी, शिथिलाचारी, गुरु, शास्त्र तथा सदाचार की निन्दा करने वाले, कलहकर्त्ता, निन्दक, आलसी, शूद्र, सम्प्रदाय-विच्छेदक अथवा प्रतिज्ञा तोड़नेवाले, अभिमानी और अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित को नहीं देना चाहिए। यह केवल भक्तियुक्त व्यक्ति को ही देना चाहिए।

आचारशून्य पशुओं के समक्ष कहीं भी कभी भी इस स्तोत्र का उच्चारण नहीं करना चाहिए। इस स्तोत्र का स्मरण-मात्र करने से सदैव विघ्न नष्ट होते हैं।

यक्ष, राक्षस, वेताल, अन्य राक्षस आदि, डाकिनियां, पिशाच, क्रूर जन्तु एवं पूतनादि राक्षसियां, खेचरी और भूचरी डाकिनी, शाकिनी आदि सभी इस स्तोत्र के पाठ से उत्पन्न प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।

इनके अतिरिक्त जो भी भयङ्कर दुष्ट जीव हैं तथा रोग, दुर्भिक्ष, दौर्भाग्य, महामारी, मोह, विषप्रयोग, गज, व्याघ्र आदि दुष्ट पशु हैं वे सभी दसों दिशाओं से भाग जाते हैं। सभी दुष्ट नष्ट हो जाते हैं। ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है।

अनूदितं श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रं शुभं भारतभाषयेदम् ।
'रुद्रेण' तट्टिप्पण-तुर्यकाढ्यं, स्वच्छन्दनाथस्य मुदेऽस्तु नित्यम् ।।

कृष्णानन्दाप्तविद्येन, रुद्रदेवत्रिपाठिना ।
कृतोऽयमनुवादोऽस्तु, सतां प्रीतिकरः सदा ।।

इति श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रस्य भारतभाषानुवादः सम्पूर्णः ।

□

ॐ

।। नमः स्वच्छन्द-भैरवाय ।।

(अथ श्रीस्वच्छन्दभैरवरूपानुस्मरणम्)

त्रिपञ्चनयनं देवं जटामुकुटमण्डितम् ।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं चन्द्रार्धकृतशेखरम् ।।१।।

[श्री स्वच्छन्द भैरव के स्वरूप का चिन्तन]

भगवान् स्वच्छन्द भैरव के (प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र होने से) पन्द्रह नेत्र हैं। उनके मस्तक पर जटा और मुकुट अथवा जटा का ही मुकुट सुशोभित हो रहा है। वे करोड़ों चन्द्रमाओं के समान हैं तथा उनकी जटा में अर्धचन्द्र विराजमान है ।।१।।

पञ्चवक्त्रं विशालाक्षं सर्पगोनासमण्डितम् ।
वृश्चिकैरग्निवर्णाभैर्हारेण तु विराजितम् ।।२।।

उनके पांच मुख (जो कि चारों दिशाओं तथा सिर के ऊपरी भाग पर) हैं। उनके नेत्र विशाल हैं। गाय की नासिका के समान मुखवाले सर्पों से मण्डित हैं। उनके गले में अग्नि के समान लाल-लाल विच्छुओं का हार शोभित हो रहा है ।।२।।

कपालमालाभरणं मुण्डखेटकधारिणम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं शरहस्तं पिनाकिनम् ।।३।।
वरदाभयहस्तं च खड्गखट्वाङ्गधारिणम् ।
वीणाडमरुहस्तं च घण्टाहस्तं त्रिशूलिनम् ।।४।।
वज्रदण्डकृताटोपं परश्वायुध-हस्तकम् ।
मुद्गरेण विचित्रेण, वर्तुलेन विराजितम् ।।५।।

कपाल-माला उनका आभरण है। तथा उनकी अठारह भुजाओं में—१-मुण्ड, २-खेटक, ३-पाश, ४- अङ्कुश, ५-वाण, ६-धनुष, ७-वरदमुद्रा, ८-अभय-मुद्रा, ९-खड्ग, १०-खट्वाङ्ग, ११-वीणा, १२-डमरु, १३-घण्टा, १४-त्रिशूल १५-वज्रदण्ड, १६-परशु, १७-मुद्गर तथा १८-वर्तुल-चक्र विराजमान हैं ।।३-५।।

सिंहचर्मपरीधानं गजचर्मोत्तरीयकम् ।
अष्टादशभुजं देवं नीलकण्ठं सुतेजसम् ॥६॥

उन्होंने सिंहचर्म पहन रखा है और गजचर्म उनका उत्तरीय दुपट्टा है। हे पार्वती ! ऐसे अष्टादशभुजाधारी, नीलकण्ठ, अत्यन्त तेजस्वी भगवान् बहुरूप का ध्यान करना चाहिए ॥६॥

ऊर्ध्ववक्त्रं महेशानि ! स्फटिकाभं विचिन्तयेत् ।
आपीतं पूर्ववक्त्रं तु नीलोत्पलदलप्रभम् ॥७॥
दक्षिणं तु विजानीयाद् वामं चैव विचिन्तयेत् ।
दाडिमीकुसुमप्रख्यं कुङ्कुमोदकसन्निभम् ॥८॥
चन्द्रार्बुदप्रतीकाशं पश्चिमं तु विचिन्तयेत् ।

भगवान् स्वच्छन्द भैरव का ऊर्ध्वमुख स्फटिक के समान है। पूर्व-मुख पीले वर्णवाला है। दक्षिण-मुख नील कमल के दल जैसे वर्ण का है। वाम भाग का मुख दाडिम के पुष्प के समान जलमिश्रित कुङ्कुम जैसा तथा अरबों—अनन्त चन्द्रमाओं के समान उनका पश्चिम-मुख है। ऐसा चिन्तन करना चाहिए ॥७-८-१/२॥

स्वच्छन्दभैरवं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥६॥
ध्यायते यस्तु युक्तात्मा क्षिप्रं सिद्धयति मानवः ।

समस्त इच्छित फलों को देनेवाला प्रभु श्रीस्वच्छन्द भैरव का जो साधक एकाग्रचित्त होकर ध्यान करता है, वह मनुष्य शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है।।६-१/२॥

या सा पूर्वं मयाऽऽख्याता अघोरा शक्तिरुत्तमा ॥१०॥
भैरवं पूजयित्वा तु तस्योत्सङ्गे तु तां न्यसेत् ।
यादृशं भैरवं रूपं भैरव्यास्तादृगेव हि ॥११॥
ईषत्करालवदनां गम्भीरविपुलस्वनाम् ।
प्रसन्नास्यां सदा ध्यायेद् भैरवीं विस्मितेक्षणाम् ॥१२॥ इति ।

श्री भैरव कहते हैं कि— पहले मैंने कहा है कि स्वच्छन्दनाथ की उत्तम शक्ति अघोरा-शक्ति है। उस शक्ति को भैरव की पूजा करके उनके अङ्क में विराजमान करना चाहिए। जैसा भैरव का रूप है वैसा ही भैरवी का भी रूप है। अतः किञ्चित् करालमुखी, गम्भीर तथा विपुल शब्द करती हुई, प्रसन्नवदना और विस्मित नेत्रवाली भगवती भैरवी का सदा ध्यान करना चाहिये ॥१०-११-१२॥

उपर्युक्तरूपानुस्मरणपद्यानां विशिटार्थः

नहि भुवने क्वापि ईदृग्देवोऽस्ति, शक्तिस्फारमयत्वादेव चायमष्टादशभुजो शारिका-देव्यास्तथात्वात् । अस्मिश्च प्रतिमुद्रास्थानीयाकृतिग्रन्थे चिद्भैरवव्याप्तिरखण्डितवास्ति ।

तथा हि :—पञ्चवक्त्रस्य स्वच्छन्दनाथस्य प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रतया त्रिपञ्चनयनत्वं पञ्चदशनयनत्व-मिति। किञ्च तिसृभिः सृष्टिस्थितिसंहृतिक्रियाभिः चिन्निर्वृतीच्छाज्ञानक्रियात्मकशक्तिपञ्चको-पोद्वलिताभिः स्वच्छन्दनाथस्य त्रिपञ्चनयनत्वं वेद्यम्। तिसृभिः परादिशक्तिभिः स्थूलसूक्ष्म-परभेदान् मायान्तं व्याप्य स्थितानां पञ्चानां नयनं येन तं त्रिपञ्चनयनम्। जटाभिरूर्ध्वपदाव-स्थिताभिर्वामैश्वर्यादिशक्तिभिः मुकुटेन च स्वातन्त्र्यास्फारेण मण्डितम्। 'चन्द्रकोटिप्रकाशम्,' इति प्रकाशानन्दघनम्। तदुक्तं श्रीलक्ष्मीकौलार्णवे :—

"अद्वैतत्वात्सुरेशानि भैरवे गीयते भुवि।
न तु दंष्ट्राकरालत्वात् तस्मात् सौम्यं विचिन्तयेत्॥" इति,

चन्द्रार्धशेखरम्— इति विश्वाप्यायकृदमाख्यामृतकलासम्बद्धम्। पञ्चवक्त्रम्— इति चिदा-नन्देच्छा-ज्ञान-क्रियाख्यानि पञ्च परस्वरूपाभिव्यञ्जकानि संसारत्राणरूपाणि वक्त्राणि यस्य तम्। विशालाक्षम् इति—

"अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जितः।" इति आम्नातपरभैरवस्फारावस्थितम्। सर्पेत्यादिना हारेण तु विराजितम् —इत्यन्तेन बहिष्कृतमायीयकर्माणवाख्यपाशत्रयसंयोजनवियो-जनक्रीडापरत्वमुक्तम्। कपालमालाभरणम्—इति अशेषविश्वशरीरं विश्वं कपालमालात्मना-वयवप्रपञ्चरूपमाभरणं न तु आवरणं यस्य। चिदानन्दघनस्य भगवतस्तित्र इच्छाज्ञानक्रियाः करणरूपाः। एकैवावस्थाश्च शक्तेस्त्रैरूप्यान्नवत्वम्। तत्र खड्गेन, ज्ञान-शक्त्यात्मना पाशच्छे-दनम्। 'खटकेन'—क्रियाशक्तिरूपेण भक्तानां संसारत्रासपरिहरणम्। पाशेन— विश्वबन्धः स्वातन्त्र्यम्। अङ्कुशेन—तदाकर्षणम्। शरपिनाकाभ्यां कारणग्रन्थिमालाभेदनम्। वरदाभय-हस्तत्वेन भोगमोक्षप्रदत्वम्। मुण्ड-धारणेन— अख्यात्यात्मकमायामुण्डापहर्तृत्वम्। अना-श्रितान्तस्य विश्वस्य अस्थिकरङ्कस्थानीयस्य स्वचिद्भित्तिलग्नत्वं खट्वाङ्गधारणेन। वीणाडमरु-घण्टाभिर्मन्द्रतारमध्यध्वनिवैचित्र्याश्रयनादावमर्शनिभालनावहितशक्तित्वम्। इच्छाज्ञानक्रिया-योगिस्वातन्त्र्यशक्तिदण्डेन त्रिशूलेन पाशत्रयशातनम्। वज्रेण—ऊर्ध्वस्थितेच्छादिशक्तित्रयेण अधःस्थितैषणीयादित्रयेण च अशेषविश्वात्मकनिजशक्तित्वम्। दण्डेन— नियतिशक्त्यात्मना विश्वनियमनम्। परशुना— हलाकृतिना नाद-शक्त्यात्मना। मुद्गरेण— बिन्दुशक्तिरूपेण अशेषभेदप्रपञ्चचूर्णीकरणम् इति ध्वन्यते। सिंहो— विश्वेश्वर-सदाशिव-शक्ति-शिवात्मक-पञ्चाननश्चित्स्फारः, तस्य 'चर्म'—चरितं, गजस्य च विततवितस्य मायात्मन उवतस्वरूप-संलग्नत्वात् परीधानं बोधाभेदात्मकस्वस्वरूपोपरि परिवर्तमानं यस्य। देवं— क्रीडादिशीलं, नीलकण्ठम् अख्यात्यात्मकमहाविषहरम्। सुतेजसम् चिदानन्दघनम्, वक्त्राणां दिग्रूपवैचित्र्यं तत्तदनुग्रहादिकृत्यवैचित्र्यात्। युक्तात्मा—एकचित्तः, सिध्यति—भुक्तिमुक्ती लभते। व्राच्य-स्यापि ध्यानमात्रात् सर्वसिद्धिप्रदर्शित्वमुक्तम्। इति महाप्रभावताऽस्योच्यते। करालत्वं— भैरवानुकारता पाशभक्षणात्। गम्भीर— विपुल-स्वनत्वं विमर्शप्राधान्यात्। प्रसन्नास्यत्वम्— परभैरवानुरूप्येण अनुग्रहप्रवणत्वात्। अत एव भैरवमुद्रानुप्रवेशादेव 'विस्मितेक्षणत्वम्। इति।

विशेष—भगवान् स्वच्छन्दभैरव के उपर्युक्त स्वरूप-वर्णन में बतलाये हुए आकार एवं आयुधों के बारे में टिप्पणीकार ने विशिष्टरूप से अर्थों को समझाया

है, जिसका सार इस प्रकार है—

इस भुवन-मण्डल में ऐसा अन्य देव नहीं है। शक्ति-विस्तार के कारण ही यह अठारह भुजाओं वाला है क्योंकि भगवती शारिका देवी भी अष्टादशभुजी ही है। इस देव की प्रत्येक मुद्रा में वर्णित आकृतियों का जो ग्रथन है, उसमें चिद्-भैरव की व्यापकता अखण्डित रूप से विराजमान है। जैसे कि— स्वच्छन्दनाथ के पांच मुख होने से और प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र होने से वह पन्द्रह नेत्र वाला है। तथा इन नेत्रों में प्रमुखतया सृष्टि, स्थिति और संहाररूप तीन क्रियाओं का चित्, निर्वृत्ति, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियात्मक पांच शक्तियों के साथ गुणन होने से ये पन्द्रह नेत्र इनके प्रतीक माने गए हैं। एक अन्य अर्थ यह भी किया गया है कि—परादि तीन शक्तियों से स्थूल, सूक्ष्म तथा पर आदि भेद से माया तक ही व्याप्त होकर स्थित पांचों की जिसके द्वारा प्राप्ति होती है, वह त्रिपञ्चनयन है।

जटा के सम्बन्ध में कहा गया है कि—ऊर्ध्वपदावस्थित वामा ऐश्वर्य आदि शक्तियाँ है तथा वह स्वच्छन्द-विस्तार-रूप मुकुट से मण्डित है। चन्द्रकोटिप्रकाश का तात्पर्य है—प्रकाशानन्दघन। इस सम्बन्ध में 'लक्ष्मीकौलार्णव' में कहा गया है कि—हे पार्वती ! वह भगवान् भैरव अद्वैत होने से संसार में सभी के द्वारा स्मरणीय है न कि कराल दंष्ट्रा आदि के कारण। इसलिए सदा उसका सौम्य रूप से स्मरण करना चाहिए। जटा में अर्धचन्द्रधारण का भाव है— विश्व को आप्यायित करनेवाली अमृतकला का धारण। पांच मुख—१-चिद्, २-आनन्द, ३-इच्छा ४-ज्ञान और ५-क्रियारूप श्रीभैरव के परस्वरूप के अभिव्यञ्जक हैं तथा संसार का त्राण करने वाले हैं।

विशालाक्ष का तात्पर्य है—अन्तर्लक्ष्य, बाह्यदृष्टि तथा निमेष और उन्मेष से रहित नेत्रवाले। सर्प आदि के हार—बहिष्कृत मायीय कर्म, आणव नामक पाशत्रय के संयोजन एवं वियोजन की क्रीडा में तत्पर होने का सूचन करते हैं। कपालों की माला का आभरण— समस्त विश्व ही शरीर है तथा उसके अवयव ही कपाल हैं जिन्हें कपालमाला के आभूषण के रूप में भगवान् भैरव धारण करते हैं, किन्तु ये कपाल आवरण-रहित हैं।

चिदानन्द भगवान् की— इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया तीन करणरूप हैं तथा ये तीनों एक ही अवस्था के हैं जो कि शक्ति की त्रिरूपता से नौ रूपों को प्राप्त हैं, यही नवीनता भी है।

शस्त्रास्त्र एवं मुद्राओं से जो अभिप्राय हैं वे भी इस प्रकार दिखलाये हैं—

१-खड्ग—ज्ञान शक्ति के द्वारा पाश का छेदन।

२-खेटक—क्रियाशक्ति के द्वारा भक्तों के सांसारिक कष्टों का निवारण।

३-पाश—विश्वबन्धन तथा स्वातन्त्र्य।

४-अङ्कुश—विश्व का आकर्षण।

५-६-शर एवं पिनाक (धनुष)—कारणग्रन्थिमाला का भेदन।

७-८-वरद तथा अभयमुद्रा—भोग एवं मोक्ष प्रदान।

९-मुण्ड—अख्याति नामक मायामुण्ड का अपहरण।

१०-खट्वाङ्ग—अनाश्रित अन्तवाले अस्थि तथा करङ्कस्थानीय इस विश्व की स्व-चिति-भित्ति से संलग्नता।

११-१२-१३-वीणा, डमरु, और घण्टा— मन्द्र, तार एवं मध्य-ध्वनि की विचित्रता के आश्रयभूत नाद के चिन्तन, दर्शन और अवधान-स्मरण की शक्तिमत्ता।

१४-त्रिशूल—इच्छा, ज्ञान, क्रियायोगी स्वातन्त्र्य शक्तिरूप दण्डवाले त्रिशूल से पाशत्रय का विनाश।

१५-वज्र - ऊर्ध्व स्थित इच्छादि शक्तित्रय और अधःस्थित ऐषणीयादि त्रय के द्वारा अशेष विश्वात्मक स्वशक्ति-सम्पन्नता।

१६-दण्ड—नियति शक्ति के माध्यम से विश्व का नियन्त्रण।

१७-परशु—ह्-ल—आकृति वाली नादशक्ति।

१८-मुद्गर—बिन्दुशक्तिरूप अशेष भेदप्रपञ्च को चूर्ण करना।

इसी प्रकार सिंहादि भी प्रतीक हैं, यथा—

सिंह—विश्वेश्वर, सदाशिव, शक्ति एवं शिवात्मक पञ्चानन का चिद्विस्तार।

चर्म—सिंह का चरित।

गज—अत्यन्त विस्तृत मायात्मा से संलग्न होने के कारण बोधाभेदरूप स्व-स्वरूप के ऊपर परिवर्तमान उत्तरीय।

देव—क्रीडादि स्वभाववाला।

नीलकण्ठ—अख्याति नामक महाविष को दूर करनेवाला।

भगवान् भैरव के अन्य विशेषण—सुतेजस का तात्पर्य चिदानन्दघन है। विभिन्न दिशाओं में तथा ऊर्ध्व भाग में विद्यमान मुख उन-उन दिशाओं के अनुग्रहादि विचित्र कृत्यों के उपलक्षण हैं। एकाग्रचित्त से ध्यान करने वाला भुक्ति एवं मुक्ति को प्राप्त करता है। यही फल एकाग्रता-पूर्वक पाठ करने से प्राप्त होता है, यही इस स्तोत्र की महाप्राभाविकता है।

भैरवी के सम्बन्ध में जो विशेषण हैं उनका तात्पर्य भी इसी प्रकार है। यथा—करालत्व—पाशभक्षण के कारण भैरव का अनुकरण। गम्भीर-विपुल-स्वनत्व—विमर्श की प्रधानता। प्रसन्न-वदनता—परभैरव की अनुरूपता के कारण अनुग्रह में तत्परता। इसीलिए भैरवमुद्रा में प्रवेश होने के कारण विस्मित नेत्र का वर्णन भी किया गया है।

—०—

श्रीमद्-धर्माचार्य-विरचिता

लघुस्तुतिः[1]

(१)

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्येललाटं प्रभां,
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोस्सदाहस्थिताद्
छिन्द्यान्नस्सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी॥

(२)

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तुस्थितिस्पर्धिनी,
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा,
ज्ञात्वेत्थं न पुनस्स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः॥

(३)

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं,
येनाकूतवशादपीह वरदे बिन्दुं विनाप्यक्षरम्।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे,
वाचस्सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्॥

---

१. प्रस्तुत स्तुति मन्त्राक्षर-गर्भ 'बाला त्रिपुर-सुन्दरी' के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधना-प्रकारों से संवलित है। सर्वत्र भारत में तथा विशेष रूप से कश्मीर-क्षेत्र में भक्तगणों द्वारा इसका नित्यपाठ किया जाता है। इसकी महत्ता इससे भी परिज्ञात होती है कि इस स्तुति के व्यापक वैशिष्ट्य को व्यक्त करने के लिये अनेक साधक आचार्यों ने व्याख्याएं लिखी हैं, इतना ही नहीं; अन्यधर्मावलम्बी जैनाचार्यों ने भी अपनी टीकाएं निर्मित कर इसके गौरव की अभिवृद्धि की है। इसीलिये भगवान् बहुरूप के स्तोत्र के साथ ही पाठकों की सुविधा के लिये इसे यहां प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक

(४)

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं,
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद् बुधश्चेद् भुवि।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः,
प्रारम्भे प्रणवास्पद-प्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम्॥

(५)

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधै-
स्तार्तीयं तदहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दुप्रभम्।
अस्त्यौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये,
गोशब्दो गिरि वर्तते सुनियतं योगं विना सिद्धिदः॥

(६)

एकैकं तव देवि! बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं,
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं,
जप्तं वा सफलीकरोति सततं तं तं समस्तं नृणाम्॥

(७)

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे,
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम्।
उज्जृम्भाम्बुजपत्र-कान्तनयन-स्निग्धप्रभालोकिनीं,
ये त्वामम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः॥

(८)

ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीक-पटलस्पष्टाभिराम-प्रभां,
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्ता विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजात्,
तेषां भारति! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत्॥

(९)

ये सिन्दूरपरागपिञ्जपिहितां त्वत्तेजसाऽऽद्यामिमा-
मुर्वीं चापि विलीन-यावकरस-प्रस्तारमग्नामिव।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर —
क्लान्तस्त्रस्त-कुरङ्गशावकदृशो वश्या भवन्ति स्फुटम्॥

(१०)

चञ्चत्काञ्चन-कुण्डलाङ्गदध-रामाबद्ध-काञ्चीस्रजं,
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिराम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुञ्जर-कर्णताल-तरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः॥

(११)

आभंट्या शशिखण्ड-मण्डित-जटाजूटां नृमुण्ड-स्रजं,
बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम्।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं,
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपसंवित्तये॥

(१२)

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले,
निश्शेषावनिचक्रवर्ति-पदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदश्श्रीवत्सराजोऽभवत्,
देवि त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः॥

(१३)

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्च्चनकृते बिल्वीदलोल्लुण्ठन—
त्रुटचत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः।
ते दण्डाङ्कुश-चक्र-चाप-कुलिश-श्रीवत्स-मत्स्याङ्कितै-
र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिदाम्भोजप्रभैः पाणिभिः॥

(१४)

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै-
स्त्वां देवि त्रिपुरे परापरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं,
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः॥

(१५)

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे,
त्वत्तः केशव-वासव-प्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी,
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे॥

(१६)

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिः स्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं,
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः॥

(१७)

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीमध्वनि,
क्रव्याद-द्विप-सर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ।
भूतप्रेतपिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं,
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे॥

(१८)

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी,
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिश्शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी,
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि॥

(१९)

आ-ई-पल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमाद्यक्षरैः,
काद्यैः क्षान्तगतैस्स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैस्सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते,
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः॥

(२०)

बोद्धव्या निपुणं बुधैस्स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं,
भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसा यत्राद्यवृत्ते स्फुटम्।
एक-द्वि-त्रि-पदक्रमेण कथितस्तत्पादसङ्ख्याक्षरै-
र्मन्त्रोद्धार-विधिर्विशेषसहितस्सत्सम्प्रदायान्वितः॥

(२१)

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वाऽनया चिन्तया,
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्,
त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम्॥

अपराध-क्षमापन-स्तोत्रम्[1]

गुरोः सेवां त्यक्त्वा गुरुवचनशक्तोऽपि न भवे,
भवत्पूजा — ध्यानाज्जप - हवन - योगाद्विरहितः ।
त्वदर्च्चानिर्माणे क्वचिदपि न यत्नं च कृतवान्,
जगज्जालग्रस्तो झटति कुरु हार्दं मयि विभो ॥१॥

प्रभो दुर्गासूनो ! तव शरणतः सोऽधिगतवान्,
कृपालो दुःखार्तः कमपि भवदन्यं प्रकथये ।
सुहृत्सम्पत्तेऽहं सरलविरलः साधकजन—
स्त्वदन्यः कस्त्राता भवदहनदाहं शमयति ॥२॥

वदान्यो मान्यस्त्वं विविधजनपालो भवसि वै,
दयालुर्दीनार्तान् भवजलधिपारं गमयसि ।
अतस्त्वत्तो याचे नतिनियमतोऽकिञ्चनधनः,
सदा भूयाद् भावः पदनलिनयोस्ते तिमिरहा ॥३॥

अजापूर्वो विप्रो मिलपदपरो योऽतिपतितो,
महामूर्खो दुष्टो वृजिननिरतः पामरनृपः ।
असत्पानासक्तो यवन-युवती-व्रातरमणः,
प्रभावात्त्वन्नाम्नः परमपदवीं सोप्यधिगतः ॥४॥

दयां दीर्घां दीने बटुक कुरु विश्वम्भर मयि,
न चान्यस्सन्त्राता परमशिव मां पालय विभो ।
महाश्चर्यं प्राप्तस्तव सरलदृष्ट्यां विरहितः,
कृपापूर्णैर्नेत्रैः कमलदलतुल्यैरवतु माम् ॥५॥

---

१. श्रीभैरव-स्तोत्र पाठ, जप, दीपदान आदि किसी भी विधि की पूर्ति के पश्चात् इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिये । इससे त्रुटियों का अपराध क्षमा हो जाता है तथा प्रभु-कृपा प्राप्त होती है । यह स्तोत्र प्राचीन आचार्य निर्मित है ।

—सम्पादक

सहस्ये किं हंसो नहि तपति दीनं जलमयं,
घनान्ते किं चन्द्रोऽसमकरनिपातो भुवितले।
कृपादृष्टेस्तेऽहं भयहर विभो किं विरहितो,
जले वा हर्म्ये वा घनरससुपातो न विषमः ॥६॥

त्रिमूर्त्तिस्त्वं गीतो हरिहर विधातात्मक-गुणो,
निराकारः शुद्धः परतरपरः सोऽप्यविषयः।
दयारूपं शान्तं मुनिगणनुतं भक्तदयितं,
कदा पश्यामि त्वां कुटिलकचशोभित्रिनयनम् ॥७॥

तपो योगं साङ्ख्यं यमनियमचेतःप्रयजनं,
न कौलार्च्चा-चक्रं हरिहरविधीनां प्रियतमम्।
न जाने ते भक्तिं परममुनिमार्गं मधुविधिं,
तथाप्येषा वाणी परिरटति नित्यं तव यशः ॥८॥

न मे काङ्क्षा धर्मे न वसुनिचये प्राज्यनिवहे,
न मे स्त्रीणां भोगे सखिसुतकुटुम्बेषु न च मे।
यदा यद्यद्भाव्यं भवतु भगवान् पूर्वसुकृतान्,
ममैतत्तु प्रार्थ्यं तव विमलभक्तिः प्रभवतात् ॥९॥

कियांस्तेऽस्मद्भारः पतितपतितांस्तारयसि भो,
मदन्यः कः पापी यजनविमुखः पाठरहितः।
दृढो मे विश्वासस्तव नियतिरुद्धारविषया,
सदा स्याद्विश्रम्भः क्वचिदपि मृषा मा च भवतात् ॥१०॥

भवद्भावाभिन्नो व्यसन-निरतः को मदपरो,
मदान्धः पापात्मा बटुकशिव ते नामरहितः।
उदारात्मन् बन्धो नहि तवक-तुल्यः कलुषहा,
पुरः सञ्चिन्त्यैवं कुरु हृदि यथा चेच्छसि तथा ॥११॥

जपान्ते स्नानान्ते ह्युषसि च निशीथे पठति यो,
महत्सौख्यं देवो वितरति तु तस्मै प्रमुदितः।
अहोरात्रं पार्श्वे परिवसति भक्तानुगमनो,
वयोऽन्ते संसृष्टं परिनयति भक्तान् स्वभुवनम् ॥१२॥

इति श्रीसिद्धयोगीश्वरश्रीघनैयालालशिष्येणात्मारामेण रचितं
श्रीवटुकप्रार्थनापराध-क्षमापनस्तोत्रं समाप्तम्

॥ शुभमस्तु ॥